

वन्दना यादव साहित्यिक विशेषांक

अभिनाव इमरोज़

Abhinav Imroz



ISSN 2321-1105

वर्ष-13, अंक-03, मार्च, 2024

Website : abhinavimroz.page

इम्तिहान इंसान का हौसला जांचने आते हैं। वे
तराशते हैं, ज़िन्दगी का सलीका सिखाते हैं और
दोबारा लौटने का भरोसा दे, आगे बढ़ जाते हैं।

—वन्दना यादव, कितने मोर्चे

अतिथि संपादक :
डॉ. रेनू यादव



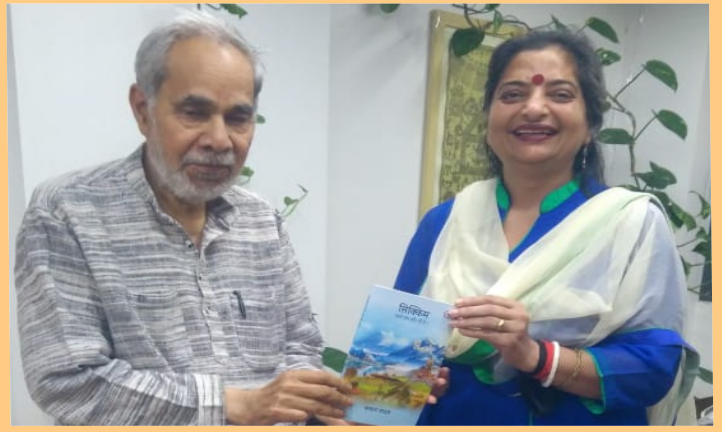
विवेक मिश्र एवं अमृता बेरा के साथ



वरिष्ठ साहित्यकार अनामिका जी के साथ कुछ जीवंत पल



आचार्य लोकेश मुनी जी को 'सिक्किम:स्वर्ग एक और भी है।' यात्रा वृत्तांत भेंट करते हुए लेखक वन्दना यादव



प्रसिद्ध पत्रकार एवं आईजीएनसीए के अध्यक्ष राम बहादूर राय जी के साथ



प्रसिद्ध साहित्यकार (स्व.) राजेन्द्र यादव के साथ आत्मीय मुलाकात



प्रसिद्ध आलोचक विरेन्द्र यादव के साथ पुस्तक मेले में



डी.जी.ओ. जनरल सुरेश चन्द्र ताँडी



अहमदाबाद लिटरेचर फेस्टिवल के आयोजक उमाशंकर यादव के साथ 'एक्सप्लोर दी अनएक्सप्लोर' की रिकॉर्डिंग के दौरान वन्दना यादव

मूलमंत्र'

मृत्यु के बाद आत्मा की शांति के लिए करवाई जाने वाली पूजा सिखाते हुए पंडित, हर रोज अपने बेटे को विधि-विधान समझाया करता था। आज भी कोई परिजन अपने प्रिय की मुक्ति के लिए पूजा-पाठ पर मन खोल कर खर्च करते हुए कह रहा था, 'पंडित तू खर्चों की चिंता मत करना, तुझे खुस कर दूंगा। बस मेरे भाई का सारा किरयाकरम अच्छी परकार से करना। बराबरी का हिस्सेदार था कहीं जमीन-जायदाद के लालच में वापस आ कर हमें दुखी ना करे। उसे अपनी बीबी और बेटी बहुत प्यारी थीं। ऐसा इंतजाम कर देना कि वो लौट ना सके।'

यजमान के जाने के बाद पंडित ने अपने पुत्र को मुक्ति का आखिरी अध्याय समझाया, 'जिंदगी की तो कोई बात नहीं मगर मर कर आत्मा लौटे नहीं, इस बात की फुलप्रूफ गारंटी चाहिए। मुक्ति से किसी का कोई लेना-देना नहीं होता। बस जाने वाला, जिंदगी भर की ज़्यादतियों का बदला लेने के लिए वापस ना आ जाए, इसी से उसे ठिकाने लगाने की शांति प्रार्थना तू अच्छी प्रकार सीख ले। यही है मुक्ति का मूलमंत्र।'

प्रकाशन कार्यालय:

बी 3/3223 वसंत कुंज,

नई दिल्ली.110070

दूरभाष : 09910497972

e-mail: abhinavimroz@gmail.com

dk.bahl1942@gmail.com,

facebook: facebook.com/abhinavimroz

website : abhinavimroz.page



Paytm

Scan & Pay



PhonePe

Bank Account Details

डी. के. बहल, A/c No. 520101222134565

युनियन बैंक, वसंत कुंज, नई दिल्ली 110070

IFSC Code : UBIN0905381

वन्दना यादव	लघुकथा	3
वन्दना यादव	कविताएँ	4-6
अतिथि संपादकीय, डॉ. रेनु यादव,		7
संपादकीय, देवेन्द्र कुमार बहल		
वन्दना यादव	कहानी	8
वन्दना यादव	कहानी	12
अशांजल यादव	टिप्पणी	15
रवि यादव 'रवि'	संस्मरण	16
अमृता बेरा	संस्मरण	18
एस. आर. हरनोट	संस्मरण	19
वन्दना यादव	लघुकथा	20
शशि पाधा	संस्मरण	21
डॉ. पूजा कौशिक	संस्मरण	22
गिरीश खेड़ा	संस्मरण	23
वन्दना यादव	लघुकथा	24
वन्दना यादव	कहानी	25
भगवंत अनमोल	प्रतिक्रिया	31
अंकुर मिश्रा	प्रतिक्रिया	31
वन्दना यादव	कहानी	32
वन्दना यादव	लघुकथा	36
वन्दना यादव	यात्रा वृत्तांत अंश	37
वन्दना यादव	लघुकथा	39
वन्दना यादव	उपन्यास अंश : 'कितने मोर्चे'	40
वन्दना यादव	उपन्यास अंश : 'शुद्धि'	42
आकांक्षा पारे काशिव	लेख	45
अंजू शर्मा	लेख	47
वन्दना यादव	कविताएँ	49

कृपया अपनी रचनाएँ केवल

abhinavimroz@gmail.com

पर ही भेजें।

संपादन-संचालन अवैतनिक/रचनाओं की जिम्मेदारी लेखकों की प्रकाशित लेखादि में अभिव्यक्त विचारों से प्रकाशक-सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। समस्त विवादों के लिये न्यायालय क्षेत्र दिल्ली।

स्वत्वाधिकारी मुद्रक एवं प्रकाशक श्री देवेन्द्र कुमार बहल की ओर से डिजिटल इण्डिया प्रा. लि., 291-डी, सेक्टर-6, आई.एम.टी. मानेसर, गुरुग्राम, हरियाणा से छपवा कर बी-3/3223 वसंत कुंज, नई दिल्ली - 110070 से प्रकाशित। संपादक, देवेन्द्र कुमार बहल

कविताएँ



वन्दना यादव

“पर्वत कहता है...”

इस बार जब मैं मिलने गई थी उससे
वो पूछता रहा हाल, बार-बार !

कैसे बिताईं बरसातें सौंधी खुशबू जब आई माटी की
बहा नदिया में पानी और घिरी घटा सुहानी
जब चहचहाए पंछी, कहीं कूक सुनी कोयल की
तब...

सच कहना, क्यों भीग गई थीं पलकें तुम्हारी ?
उन बरसते बादलों संग याद में मेरी
क्या तुम्हारी आंखें भी बरसी थीं ?

जब अलसाई सी शाम में खुमारी चढ़ी थी
ठिठुरन से सिकुड़ते,
अपने आपको जब तुमने बांहों में भरा था
गहरे कोहरे में मुंह खोलते ही भाप बन, उर्जा उड़ी थी
बर्फ की याद में जब नदिया के ठंडे पानी को छुआ था
उस ठंडी सिंहारन में, मेरे सीने पे जमी बर्फ को
क्या तुमने याद किया था ?

सच कहना कि जब सुबह का सूरज उगा था
नया नवेला मगर कुछ कुनकुना था
झुरमुट से पेड़ों के जब छिटकी थी चांदनी
अकेले चांद संग बिताई थी यामिनी
शाम को अक्सर सड़क पे टहल के
दरख्तों के सायों में जो गुजरे थे पल
धूप की ठिठौली जब पसरी थी पास में
सच कहना क्या कभी तुमने मुझे याद किया था ?

पिछली बार हवाओं की चादर पे
हरी घास का तकिया लगाए
मूंदी थीं पलकें कुछ पल
और बादलों ने रजाई बन ढक दिया था तन
इन उर्निंदी आंखों ने जीए थे वो पल
झूठ ना कहना
दिल की वादी ने उस पल क्या मुझे याद किया था ?

इतना सुन कर पर्वत कहता है -

अब मैं कहूं तुम्हें अपनी बात
बरसात में बहते पानी संग बिखरा था तन
ठंड में जाड़ों की धूप संग जकड़ा था मन
और बसंत में जब खिल उठा था तन,
हर पल मैंने तुम्हें याद किया !
मैं स्थिर अंचल
छोड़ गए तुम मुझे चंचल
तेरी आमद को तरसता हर पल
कि लौट आओ तुम एक दिन
मैं उदास हो चला - तेरे बिन !
मैं पर्वत हूं !
तेरा पर्वत !!
सदा पर्वत !!!

अबकी बार

सुनो, अबकी बार जब तुम गांव जाओ ना, तब
आंगन से पोटली भर मिट्टी बांध लाना।
जहां बीता था बचपन लाड़ में-प्यार में, डांट में और
कभी-कभी कान खिंचाई में
उस बिछड़े हुए बचपन की यादें बांध लाना पोटली में।
सुनो, अबकी बार जब तुम गांव जाओ...
जहां तपती दुपहरी नीम की छाया में सुख पाती थी
गांव के बड़े तालाब वाले बूढ़े नीम की
निमौलियां बांध लाना पोटली में
वहां कोई नहीं रोकेगा तुम्हें
कहना कि इस मिट्टी से उपजी बेटी है परदेस में
उसे बुलाती है ये मिट्टी, ये निमौली और ये आंगन...
तुम हर चीज बांध लाना पोटली में
इस बार जब तुम गांव जाओ ना,
घर के आंगन की मिट्टी बांध लाना पोटली में।

दादी जब मथती थी दही,
बिलोवने की धिर-धिर सी आवाज़ आते ही
थाली में रोटी ले पहुंच जाते थे सब
वो लड़ाती-पुचकारती,
रखती थी हथेली भर-भर मक्खन रोटी पे
वो रात की ठंडी रोटी और सुबह का ताज़ा मक्खन...
सुनो, इस बार तुम उस हांडी और बिलोवणे को
बांध लाना पोटली में।
सुनो, अबकी बार जब तुम गांव जाओ ना,
देर सारी यादें बांध लाना पोटली में।

क़ैर¹ की बर्णों में दोपहर भर तोड़ते थे क़ैर
छाछ की हंडिया में कई-कई दिन उन्हें भिगो
फिर मसाले बना कर मां बनाती थी उनका अचार

मिस्सी रोटी पर मक्खन और क़ैर का अचार
साथ में छाछ का गिलास...

सुनो, इस बार जब तुम गांव जाओ,
सब समेट लाना पोटली में
कोई नहीं रोकेगा तुम्हें
तुम देर सारा प्यार बांध लाना पोटली में।

वो पड़ोस की रूपा, दूसरी गली की सीता
पिछवाड़े की सविता और बगल वाली कमलेश
तुम सबको बोल आना कि अबकी बार ईंख की रूत में
गुड़ की भेली सिर पर लिए आना तुम आंगन में
सब अपना-अपना अंश डालना, भर देना थाली
चुल्हा सुलगा कर चढ़ाना तवा
अंगारके बना के भर लेना झोली
और फिर सब मिला के
बांध लाना पोटली में।

सुनो, अबकी बार जब तुम गांव जाओ
आंगन से यादें बांध लाना
प्रेम की बातें बांध लाना
सखियों का साथ बांध लाना पोटली में।
अबकी बार जब तुम गांव आओ...
सुनो, अबकी बार जब तुम गांव जाओ ना,
आंगन से घर की मिट्टी बांध लाना पोटली में!!

1. (क़ैर/टीट/डेले)

“मेरा हक़”

वो घर अब
बदल सा गया है कुछ-कुछ
और गलियाँ भी
अलग सी दिखती हैं
वो उंगलियाँ नहीं रहीं
जिन्हें पकड़ कर
सब सुहाना लगता था
वो साथी भी छूट गए
जिनका साथ ज़िंदा होने की शर्त होता था
मगर
हक़ है मेरा आज भी
उन गलियों, साथियों और
उस घर से जुड़ी
तमाम यादों पर।

“इबादत”

हम दोनों का
जो नाता है
एक-दूसरे के साथ
ज्यों सुबह का शाम से
और
शाम का भोर से
बीच में आने वाली
अंधेरी रात
और
चिलचिलाती धूप को भुला
जुड़े रहते हैं हम
मन से,
एक-दूसरे के साथ
बस यही इबादत है।

“ठहर जाओ तुम”

बहुत खूबसूरत है
साथ तुम्हारा
कभी जाने की जल्दी छोड़कर
बोला करो
घड़ी, दो-घड़ी
बेफिक्री में
साथ मेरे

सुनो
आज वक्त को जाने दो
तुम ठहर जाओ।

“ये इश्क़ है”

तेज बहता दरिया है
जो
बहाव में अपने संग
ले जाने को आमादा है
या
एक सहरा
जहाँ
पानी की तलाश में
भटकना होगा
जो भी है
ये इश्क़ है।

—दिल्ली

ईमेल: yvandana184@gmail.com

अतिथि संपादकीय



डॉ. रेनु यादव

लेखन में प्रतिस्पर्धा नहीं, बल्कि आत्मानुभूति की आवश्यकता होती है। आत्मानुभूति में निज-अनुभूति और बाह्यानुभूति दोनों का कोलाज होता है, जो कला के साथ मिलकर सौन्दर्यानुभूति की प्रतीति करवाता है। अनुभूति का आत्मसातीकरण जितना गहरा होगा उतना ही लेखन या कला में निखार आता है।

प्रत्येक लेखक के लिए आत्मसातीकरण का स्तर अलग-अलग होता है, इसलिए लेखन में भिन्नता दिखाई देती है। जब भी कभी रचनाओं की तुलना की जाती है तब बाह्य स्तर पर रचनाओं की तुलना होती है और आंतरिक स्तर पर लेखक के आत्मसातीकरण की तुलना अनायास ही होती है। पर आलोचक कभी भी लेखक के आत्मसातीकरण को ध्यान में रखकर आलोचना नहीं करता। क्योंकि यदि आलोचक मनोवैज्ञानिक स्तर पर आत्मसातीकरण का आलोचना करेगा तब आलोचना में तटस्थता की संभावनाएँ कम हो जायेंगी अथवा रचनाएँ केन्द्र में न रहकर लेखक का परिवेश और व्यक्तित्व केन्द्र में हो जायेगा।

आलोचना एक जटिल प्रक्रिया है। आत्ममुग्धता के युग में लेखक, आलोचक और आलोचना का संबंध बेहद नाज़ुक दौर से गुजर रहा है। इसे आलोचना के संकट का समय कहें तो अतिशयोक्ति न होगा। जिस रचना पर शत-प्रतिशत प्रशंसा हो उस रचना पर संदेह किया जाना चाहिए। यही कारण है कि आलोचना के संकट के समय में 'वन्दना यादव साहित्यिकी विशेषांक' में वन्दना यादव की रचनाओं पर लिखे गए लेखों एवं आलोचना में संपादक की ओर से कोई बदलाव नहीं किया गया है। अभिनव इमरोज़ और साहित्य नंदिनी का यह अंक वन्दना यादव को मूलतः 'वन्दना यादव' रहने पर ज़ोर दिया है, ताकि वन्दना यादव के व्यक्तित्व और कृतित्व को अभिधा में पढ़ा जाये और लक्षणा में जाना जाए।

साहित्य नंदिनी में लेखिका की रचनाओं पर आलेख, शोध-आलेख एवं समीक्षा संकलित है तो अभिनव इमरोज़ में वन्दना जी के उपन्यासों एवं यात्रा-वृत्तांत के अंश, कहानियाँ, कविताएँ, लघुकथाएँ, लेख हैं, साथ ही लेखिका के ऊपर लिखे गए अन्य लेखकों के संस्मरण एवं आलेख हैं।

वर्तमान समय में मनुष्य पहचान के संकट से जूझ रहा है, ऐसे में विभिन्न विमर्शों के दौर में वन्दना यादव ने 'कितने मोर्चे' उपन्यास तथा 'जिन्दगी और मौत के बीच' (संपादकीय पुस्तक) में सैनिक तथा उनके परिवारों के ऊपर गहरा संकट को चुना, 'शुद्धि' उपन्यास में जीवन के बजाय मृत्यु संस्कार में जीवित आत्मीयजनों के मृत हृदय को चुना, कहानियों में मध्यमवर्गीय समस्याओं को, 'सिक्किम : स्वर्ग एक और भी है' यात्रा-वृत्तांत में मृत्यु के साथ आँख-मिचौली खेलते हुए अपने सुरक्षित स्थान पर पहुँचने के स्वर्ग की अनुभूति को चुना है। कविताओं में बेहद निज-अनुभूति है तो लेखों में परानुभूति है। आशा है कि यह विशेषांक वन्दना यादव की लेखकीय प्रतिभा को समझने में मददगार होगा और वर्तमान समय में लिखे जा रहे साहित्य में वन्दना यादव के साहित्य की विशेषताओं को प्रदर्शित करने में सहायक हो सकेगा।

—नोएडा, Email : renuyadav0584@gmail.com

‘अभिनव इमरोज़’ का आरम्भिक काल से ही घोषित उद्देश्य है कि नवोदित, भीड़ में गुम, दौड़ में पीछे रह गए और संकोचग्रस्त प्रतिभाओं को यथायथ यथास्थान दिया जाएगा। हमारा हिन्दी साहित्य जगत् एक विशाल सामूहिक ऊर्जावान पिंड है, जिसका विन्यास, जागृत चेतना और चिंतन के स्वामी गुणी जनों द्वारा हुआ है और विकास विस्तार: जिज्ञासु महत्वाकांक्षी हिन्दी साहित्य प्रेमासक्त रचनाकारों ने अपने वरिष्ठों के मार्गदर्शन में हिन्दी साहित्य को वैश्विक स्तर पर ले जाने की जिम्मेदारी निभाई। वर्तमान में हिन्दी एक अंतर राष्ट्रीय - मुकाम हासिल कर चुकी है। एक प्रधान मंत्री ने हिन्दी को यू.एन.ओ. में पहचान दिलाई और दूसरे ने प्रत्येक अंतरराष्ट्रीय मंचों पर हिन्दी को अपनाया- इससे पहले हिन्दी फिल्मों के माध्यम से डॉ. अंजना संधी ने यू.एस.ए. में एक ग्रंथ लिख कर - हिन्दी का प्रचार-प्रसार किया। दिन प्रतिदिन हिन्दी के बढ़ते कदम भारत को गौरवान्वित कर रहे हैं।

हम निरंतर नवोदित लेखकों को मंच मुहैया करवा रहे हैं। हमारे इस प्रयास से उत्साहित करने वाले परिणाम हमें मिल रहे हैं। आप के संपर्क में अगर कुछ ऐसी उभरती हुई प्रतिभाएँ हों तो हमारी पत्रिका ‘अभिनव इमरोज़’ से जुड़ने के लिए परिचय और प्रोत्साहित करें।

हमारा मानना है: बकौल एक अज्ञात शार्डर-

गौहरे मकसूद खुद मिलता है, हिम्मत शरत् है,
मुंजूर रहता है हर मोती उभरने के लिए।

३१/८/२३

दोपहरी !



वन्दना यादव

'दिन छोटे होते जा रहे । पहिले तो दोपहिया में घर जाती रही, अब यहीं फूल पत्तोंईन के संग बईठती हूं पारक मा । साम का काम खतम करके एकही बार जाउंगी घर । ' ऊंची-ऊंची रिहाईशी इमारतों के बीच बने बगीचे में बैठी शगुन मोबाइल पर किसी को अपनी दिनचर्या की ताज़ा जानकारी दे रही थी ।

'ऐ सगुनी तू बजार गई थी न, ले आई लछमी-गणेश?' सुबह-शाम साथ आने-जाने वाली प्रिया भी अपना काम खतम करके बगीचे में जमने वाली मंडली में शामिल होने पहुंच गई ।

'ना, अभी पगार कहां मिली? हाथ में पैसा होगा तबही ना खरदेंगे... क्यूं तू ले आई का?'

'कब लाई? पैसा हाथ-पल्ले होगा तबही लाएंगे अभी पगार कहां मिली?' दोनों की परेशानी एक जैसी थी ।

'कितनी भी कोसिस करके देख लेओ सात-आठ तारीख से पहले ना मिलने की पगार । ' कृष्णा अपने खालिस उत्तराखंडी लहजे में बड़बड़ाती हुई बगीचे के गहरी छाया वाले नीम के पेड़ के नीचे आ पहुंची ।

'कहने को ये लोग महंगे-महंगे फ्लेटन में रहती हैं पर एक तारीख को इनकी जेब में पल्ली नहीं होती हमारे हाथ में धरने को...' कहती हुई वह धम्म से हरी घास पर बैठ गई । जितना गुस्सा उसे तनख्वाह ना देने वाली फ्लैट में रहने वालियों पर आ रहा था, वह सब उसने धरती पर उतार दिया ।

'इहां तो सब जगह दोनू कमाने वाले लोग ही रहते हैं । करोड़, दो-करोड़ के फ्लेटोंन में रहते हैं जे लोग पैईसे की कोनो कमी नहीं है इनके पास पर उ जानती हैं कि इधर एक तारीख को पैईसे दिए उधर अगले ही दिन तुम बिन बताए उसका काम छोड़कर जहां दो पैईसा जादा मिलेगा ऊ घर पकड़ लेओगी । तुम्हारे लछन ऐसे हैं तबही ना । ' शगुन ने उसे आईना दिखाया ।

'मेरे लछन... तुमको भी तो नहीं मिली पगार फिर तुम्हारे लछनों को का हुआ, हूं?' कृष्णा ने शगुन की आंखों में आंखें डालकर भौंहों को सवालिया अंदाज़ में घुमाते हुए कहा ।

'गुस्सा तो तुम्हारे नाक पे धरो रहत है । तोहार बात ना कह रहे उन फ्लैट वालियन की कह रहे । उ यही तो कहती हैं हम सबके बारे में तबही पांच-सात दिन उपर चढ़ा कर पैइसा देती हैं कि कोई बीच में काम ना छोड़े देवे । ' तीनों के अतिरिक्त दोपहर को सुस्ताने पहुंची मंडली की कुछ ओर सखियाँ इस बात पर फीकी सी हंसी हंस दीं ।

'तुम्हारे लिए दीबाली बड़ा त्यौहार है, है ना । ' सोमिष्ठा शुरुआत के मुद्दे पर लौट गई ।

'क्यूं तुम्हारा नहीं है? दीवा नहीं जलाओगी घर के बाहिर?' शगुन ने उसे आड़े हाथों लिया ।

'दीबाली बाद में आएगा, हमारा तो उससे पहले ही पूजा शुरू हो जाता है... दुर्गा पूजा । हमारे लिए एक दिन का त्यौहार नहीं है ना, पूरा नौ दिन का पूजा होता है । ' सोमिष्ठा ने अपने अंदाज़ में कहा ।

'दस दिन दुर्गा पूजा उसके बाद दीपावली भी!' प्रिया ने चेहरे से पसीना पोंछ कर मास्क को दोबारा मुंह पर लगाते हुए कहा । वह त्यौहारों की लंबी कतार पर हैरान थी ।

'हां! हमारा बड़ा त्यौहार दुर्गा पूजा है जैसे तुम्हारा दीबाली! एतना दिन का पर्व ओर किसी का नहीं होता...' सोमिष्ठा शायद अपनी संस्कृति के बारे में कुछ ओर भी बताती मगर उसकी बात बीच में काटना सुप्रिया के लिए ज़रूरी हो गया था ।

'हमारा भी तो दस दिन का पूजा होता है गणपति बप्पा की इस्थापना से ले कर बिसर्जन तक । सारा घर पीले रंग में रंग जाता है । मोदक का परसाद और सुबह-साम की आरती, भोग लगाना अउर सारा दिन लोगों का आना-जाना लगा रहता है । ' इतना कहने के साथ ही 'गणपति बप्पा मोरया अगले बरस तू जल्दी आ' का जाप ना जाने कब उसके मुंह से शुरू हो गया । सारी सहेलियों ने उसके साथ अपने-अपने अंदाज़ में गणपति बप्पा को अगले वर्ष जल्दी आने की याद दिलवाई ।

'यहां मनाई तुमने गणेश चतुर्थी?' कृष्णा ने पूछा।

'ये लो, कौनसी दुनिया में रहती हो तुम?' पूरे मोहल्ले ने मोदक का परसाद खाया, कीर्तन किए फिर गणेश जी को जल में बिसर्जन करने के लिए सारा मोहल्ला इकट्ठा हुआ। ' इस बार सुप्रिया का माथा गर्व से ऊंचा हो गया था।

'इसको कैदसे मालूम होंगा, तब ये हमारे साथ नहीं ना थी। ' शगुन ने टोका।

'क्यूँ सुप्रिया तुम कहां थी? आती-जाती तो अब भी नहीं हो हमारे साथ, कहां रहती हो?' यह मंडली की स्थानीय सदस्य लक्ष्मी थी।

'यहीं रहती हूं। ' सुप्रिया ने गहरा सांस छोड़ा।

'का हुआ, एको तुमही थोड़ी परसान हो, सबही को बरोबर मार पड़ी है। मन का बात मन मा रख कर भी का कर लोगी, बता ही दो। ' शगुन ने ठेठ बिहारी अंदाज़ में नसीहत दी।

'का बताएंगे... सब तो मालूम है। जो सबके साथ हुआ, वही हमारे साथ हो रहा है। बस किसी तरह रोटी का गुजारा कर ले रहे हैं। ' आने वाले त्यौहारों की रौनक जिस तरह आई थी उसी तेज़ी से सबके चेहरों से गायब हो गई।

'का हुआ तुमरी नौकरी को? इहां कईसे पहुंची भाई!' मंडली से आवाज़ आई।

'ये इसकूल है ना (सुप्रिया ने उंगली के इशारे से विशालकाय इमारत की ओर सबका ध्यान खींचा) उहां छोटे बच्चों की किलास में एक मैडम पढ़ाती है और एक सहायिका रहती हैं, हम ओ ही थे, सहायिका। इसकूल बंद होने से मैडम के साथ-साथ हमारी नौकरिया भी जाती रही। '

'..... ' किसी की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं आई। मौक़े पर मौजूद सभी सहेलियों की जीभ इस चिर-परिचित स्वाद से एक बार फिर कसैली हो गई। जिस सच्चाई को भुला कर उनमें से कुछ अपने एक घंटे की छुट्टी का आनंद लेने पहुंची थीं, वे सभी इस स्वाद को गुटके की पीक के समान थूक देना चाहती थीं मगर वह सबके मुंह में अर्थव्यवस्था पर कोरोना वायरस की तरह जम कर बैठ गया था।

'परिवार कहां है तुम्हारा?'

'इस इसकूल में मेरा पति पिरिंसीपल ऑफिस का काम देखते रहे... हम दोनों की नौकरी एको साथ चली गई। ' उसकी आवाज़ में मायूसी थी।

'तो कहां रहती हो अब? का काम करती हो?' गरीबी रेखा से नीचे का तबका भूख की इकलौती मार झेलता है उनको मध्यम और उच्च वर्गीय लोगों के समान समाज में अपने मुकाम को लेकर झूठ, दिखावे और काम की सच्चाई छुपाने की दोहरी मार नहीं झेलनी पड़ती। इस मामले में यह तबका दिखावट और झूठ पर विजय हासिल कर चुका है।

'इस टेम आदमियों की नौकरियां चली गई हैं औरतें फिर भी घरों में काम-धाम करके अपने घर का चुल्हा जला ले रहीं। अब मैं ही काम करती हूँ। जैसे-तैसे करके काम चला ले रहे। उम्मीद है कि बिमारी खतम होगी और इसकूल खुलेंगे तो हमको दुबारा काम मिल जाएगा। '

'आजकल यही हाल है सबका। बज़ार और काम बंद हुए हैं तब से आदमियों की नौकरियां जाती रहीं, औरतें घरों में काम करके अपनी गृहस्थी खींच रही हैं। पहले कहते थे कि आदमी नहीं होगा तो का खाएंगे पर अब तो यही है कि जिस घर में औरत नहीं है, वही लोग भूखे मर रहे हैं। ' लक्ष्मी ने कहा।

'ठीक कह रही हो, हर परसानी से, हर जुग में औरत ने ही पार लगाया है। अपने परिवार की नैय्या हो या समाज की.... दुर्गा की पूजा भी तो तब ही करते हैं, वह औरत है, शक्ति का रूप। ' लक्ष्मी ने निराशा की ओर बढ़ते माहौल को उम्मीद का टिमटिमाता दीपक थमा दिया।

'औरत और धरती, दोनों एक्को ही हैं। अपनी देह पर धरती सबकी पैदावार और पालन-पोसन करत है, औरत भी पैदा करने से लेकर जिनगी भर परिवार का पालन-पोसन करती है। हम ही शक्ति हैं जिज्जी। ' कृष्णा को अपने महिला होने पर गौरव की सी अनुभूति हुई।

'हाँ औरत ही तो देवी हैं जिनकी पूजा होती है लाल साड़ी में। ' इस बार सब सहेलियों ने प्रिया की बात पकड़ ली।

'लाल साड़ी, बहुत मन है तुम्हारा लाल साड़ी पहिने का। ' एक-दो इस बात पर हंसने लगीं।

'हाँ, करवा चौथ पर मां-घर से आएगी हमारे लिए लाल साड़ी। ' वह अपनी धुन में बोलती जा रही थी।

'हमारे त्यौहारों की कथा तो हमको मालूम है पर तुम्हारे त्यौहार की कोई खबर नहीं है। तुमको मालूम है क्या कि ये दुर्गा पूजा क्यों मनाई जाती है? बाज़ार में इसकी कोई कथा-कहानी की किताब भी तो नहीं मिलती!' लक्ष्मी ने सोमिष्ठा से कहा।

'गजब! यही सवाल आज हम अपनी सास को पूछे। उ कह रही थी कि अंगरेजन ने लड़ाई लड़ी थी तबही से मनाना सुरू हुआ। ' शगुन के अल्पज्ञान ने उसे प्लासी की लड़ाई में अंग्रेजों द्वारा मुगल शासक को युद्ध में हराने के इतिहास से अनजान ही रखा था। जब उसे युद्ध के बारे में जानकारी नहीं थी तब जान-माल के भारी नुकसान और हुक्मरान अंग्रेजों के प्रार्थना स्थल ध्वस्त करने के बाद हिन्दू राजा की सलाह पर ईश्वर को धन्यवाद करने के लिए विशालकाय आयोजन से दुर्गा पूजा की शुरुआत की बात भी अजूबा ही थी।

'मैंने किताब में पढ़ा था कि अंग्रेजों ने हमारे लिए कुछ अच्छा काम भी किया था जैसे दुर्गा पूजा। वैसे हमारे वहां बड़े उमर के लोग बताते हैं कि कई पीढ़ियों से से चल रहा है दुर्गा पूजा। ज्यादा भी नहीं तो भी दो-चार सौ साल से तो मनाते ही होंगे। ' सोमिष्ठा ने अपनी बड़ी-बड़ी आंखों को और बड़े आकार में खोलते हुए कहा। उसकी शिक्षा में अंग्रेजों ने सिर्फ दुर्गा पूजा तक ही काम किया था शायद यहीं तक उसकी रुचि रही होगी अन्यथा वह सती प्रथा और बाल विवाह के संबंध में भी जरूर कुछ कहती।

'हमारे गणपति पूजा का इतिहास भी ऐसा ही है, कई सौ साल पुराना। सुरू-सुरू में राजाओं के महलों में फिर मंदिरों में ऊंची जाति के लोगों ने मनाया। बहुत बादमें भाईचारे के लिए आम लोगों के बीच बप्पा आए। वैसे दो-चार सौ साल इसको भी हो गया है। ' सुप्रिया ने परिवार में सुनी-सुनाई बातें दोहराते हुए दो सौ वर्षों के अंतराल को हवा में उड़ा दिया।

'ऐसो हुआ होगो तबही ना सब लोगन में त्यूहार मनावे की मंशा बनी रही। त्यूहार भी तो तबही जिंदा रहते। ' बुंदेलखंडी लहजे में प्रिया ने आंकलन किया।

'हाँ हम गरीब लोग ही तो जिंदा रखे हैं त्यूहारन को, ओर का। उनके लिए तो मनोरंजन के भौत साधन हैं एक हम हैं जो गाम आना-जाना, त्यूहार मनाना करते हैं। बच गयो तुम्हारे गणपति बप्पा को त्यूहार। मंदिरन में बंद होतो तो बंद ही हो गयो हतो। ' प्रिया ने अनजाने में ही वर्ग आधारित समाज और जनसंख्या के आंकड़ों की तस्वीर खींच दी।

'त्योहार तो सबही अच्छे पर छठ पूजा जैसा कठिन व्रत ओर नहीं। सबके यहां मूर्तियों की पूजा होती है, हमारे चार दिन की पूजा में सब परकरती के लिए पूजा करते। सूरज, पिरथवी, जल और धरती पर पैदा होन वाली सब्जी, अनाज, फल... छठ मैया की पूजा मे पूरा परिवार सामिल रहता है। सब बिहारियों का घर में पूजा होता ही

है। ठेकुआ बनता है, नियम बहुत कठोर है पूजा का...' वह बोलती जा रही थी।

'मालूम है तुमको, सब लोग पीला रंग पहिनते हैं। ' जरूरी बात जो बतानी छूट गई थी, बात खत्म करने से पहले उसे याद आ गई।

'हमारा दुर्गा पूजा में भी सब दिन अलग-अलग तरह से पूजा होता है। प्रसाद का खिचड़ी तो तुमने खाया ही होगा। एक दिन सात सब्जियों के अलग-अलग पत्ता डाल कर भी सिरफ पत्ता का शाक बनाते हैं। ' बोलते समय अपनी बात को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए सोमिष्ठा अपनी आंखों को ओर बड़ा खोल लेती थी।

'गणपति बप्पा की पूजा के दिनों में सोने जैसा रंग पहनते सब कोई। एकदम सुनहरी पीला रंग में रंग जाता है सब कुछ। ' सुप्रिया के लिए सबकी बात बीच में काट कर अपनी बात रखना जरूरी हो गया था।

'ऐ तुम यहां काहे आई भई? यहां पर रहने वाले लोगन तो अपने गाम को भग गए और एक तुम हो कि उल्टी दिसा को दौड़ीं!' प्रिया ने सोमिष्ठा को टोका।

'मैं जब इसकूल में पढ़ती थी, किताबों में लिखा था कि दिल्ली जितनी बार उजड़ी, दोबारा बस गई। बस इसीलिए आइ हूँ कि सब कुछ खतम हो जाएगा तब भी यहां कुछ ना कुछ तो बचेगा जरूर। और जब कुछ ना कुछ जरूर बचेगा तो उसमें हो सकता है हम भी बच जाएं। ' वह मुस्कुरा रही थी।

'तुमको जकीन है कि इहां वाले लोगन बच जांगे। ' एक गहरी आवाज उभरी।

'हूँ। लगता तो ऐसा ही है। '

'अगर बच गए ना, तब तो हम भी तोहरे साथ तुमरी दुर्गा पूजा मनावेंगे। ' शगुन ने कहा।

'तुम्हारे कौनसा रंग पहना जाता है पूजा में?' लक्ष्मी की जिज्ञासा अब तक शांत नहीं हुई थी। निरक्षरता इंसान की प्रगति में बाधाएं डालती है। जानकारी जुटाने की सीमा भी इन्हीं में से एक है अन्यथा हाथ में पकड़ा मोबाइल जो अक्षर ज्ञान के आभाव में उससे खाली समय में वीडियो दिखा कर मनोरंजन के लिए उकसाता है, उसी से वह अपनी जानकारी बढ़ा सकती थी।

'हमारे नौ दिन, नौ दुर्गा की पूजा में हर दिन अलग-अलग रंग पहिनते हैं। '

'सुन रही हो जिज्जी, हमको तो लगत है कि पहले-पहल दिल्ली में पुरानी फिल्मों की तरियां सिरफ तीन रंग हते। केसरिया-लाल

लक्ष्मी पूजा अऊर दीबारी के लिए, सफेद गुरू पूरब के और हरा ईद के दिन का। हमको तो पूरा जकीन है कि यहां के लोगन को रंग हम बाहिर से आ कर बसे लोगन ने ही दिए हैं। मने, सगरे रंग हमारे हैं।' वह अपनी बात खत्म कर चुकी थी।

'यही नहीं पूरे देस में एक-दूसरी जगह से आ कर बसे लोगन ने रंग भरे हैं नहीं तो कम से कम दिल्ली के लोगन तो सिरफ तिरंगे कपरे ही पहनते।' उसने अपनी बात दोहराई।

'दिल्ली सहर इहां आसपास के रहने बारे हिन्दुओं, सिक्खों और मुसलमानों का था। इहां इन लोगों के रीति-रिवाजों के मुताबिक ही कपड़े-लत्ते मिला करते। अब सोचो कि अगर हमारे जैसे लोग यहां-वहां से आ कर इहां अपना घर ना बसाते तो का होता!' कृष्णा की बात पर सब हंस पड़ीं।

'इसका मतलब देस के झंडे का रंग था दिल्ली में। बाहर से आने वालों ने बाकी रंग दिए इसे।' लक्ष्मी ने अपना आंकलन बताया।

'ब्लेक एंड व्हाइट फिल्मों की तरह देस की राजधानी दिल्ली, लाल सफेद और हरे रंग की रहती। जो गणपति और छठ पूजा के रंग हम लाए हैं, वो सोने से चमकते रंग यहाँ कभी ना आते।' लक्ष्मी की बात को अनसुना कर सुप्रिया ने अपनी संस्कृति पर गर्व करते हुए कहा।

'हम लोग नहीं आता तब हमारा दुर्गा पूजा का रंग भी तो... हेलो... हेलो मैडम...' सोमिष्ठा अपनी सांस्कृती के बारे में बताना चाहती थी मगर बीच में आए फोन के कारण उसका वहाँ से उठ कर दूर जाना ज़रूरी हो गया।

'इसका मतलब दिल्ली को हमीं ने रंगा।'

'हाँ दिल्ली भी औऊर पूरा देस भी हमरे रंगो से रंगा है ओर का। नहीं तो जो जहां रहता, वहीं के रंग पहिन्ता, वहीं के त्यूहार मनाता। काम की तलाश में निकरे हमारे जैसे लोगों ने सबको रंग दिया।'

इसी बीच मंडली की ओर तेज़ी से लौटती सोमिष्ठा की ओर एक-दो सहेलियों का ध्यान गया। इससे पहले कि कोई उससे कुछ पूछती, अपना बटुआ उठा कर उसने वहाँ से जाने के लिए कदम बढ़ा दिया।

'अरे बैइठो तनिक, चली जाना। का जल्दी है जाने की? उ घर भी वहीं रहेगा अउर उ काम भी तुमरे इंतजार में वहीं पड़ा रहेगा। कोई

अउर ना करिहें तुहार हिस्से का काम।' कहते हुए दोपहर में जमने वाली बैठक की धाकड़ ने सोमिष्ठा का हाथ मजबूरी से पकड़ लिया।

'मेरी मैडम का फोन था। उनके घर किसी का एक्सीडेंट हुआ है, वो हॉस्पिटल जा रही हैं। मुझे जाना है, मेरा हाथ छोड़ो दीदी।'

'अरी चली जाना, तनिक सबर करो। इतनी हड़बड़ी अच्छी नहीं भाई। यह एक घंटा तुम्हार लिए है। आराम से जाओ, यह नहीं कि तनिक आवाज आई नहीं कि दौड़ी-दौड़ी पहुंच गई।' कद्दावर ने खिल्ली उड़ाते हुए मंडली की ओर देखा। जैसा हमेशा से होता आया है उस परंपरा से नया बसा उपनगर महरूम नहीं था। रौबदार की मुस्कुराहट पर हंसी लुटाने वालियाँ तैयार थीं।

'दीदी, मेरी मैडम की बिटिया स्कूल से आने वाली है, मुझे जाना है। आधा घंटा बाद जाऊंगी तब तक मैडम को हॉस्पिटल जाने में देर हो जाएगा।' सोमिष्ठा ने एक बार फिर मनुहार की।

'तुम लोगन ने ही मैडमों का सिर आसमान पर चढाया है। जे नहीं कि अपने हक की बात करें। उ जब आबाज लगाएंगी तूम्हार जैसी पहुंच जाती हैं पूछ हिलाती-हिलाती। तनिक सलीके से रहा करो। कम करने का भी ढंग होता है।'

'हमारे गाम में काम नहीं है तबही अपना देस छोड़कर यहां आए हम। उधर मेहनत का उतना पइसा भी नहीं मिलता। यहां पइसा मिलता है तो हम काम करके देगा। एक तो पहिले ही फुल टाईम बोल कर सिरफ आठ घंटे की नौकरी करते हैं उस में भी घंटाभर की छुट्टी अउर फिर रोज-रोज थोड़ी देर से जाऊं... उ लोग हम पर भरोसा करें भी तो कैसे।' इस बार उसने अपना हाथ छुड़वा लिया।

'त्योहार और जन्मदिन पर वो लोग हमको अलग से गिफ्ट देती है वो ठीक है पर हम उनके लिए कुछ नहीं करें, आप ऐसा कैसे सोचती हो दीदी?' कहती हुई वह बगीचे से बाहर चल गई।

बगीचे की सारी चहचहाट और चटख रंग समिष्ठा अपने साथ ले गई। मंडली में में सन्नाटा पसर गया।

'जितना भी काम होवे, दुपहरिया के इस एक घंटे के पीछे सब जल्दी-जल्दी हाथ चला कर खट-खट निपटा देती हूँ। ये एक घंटा कहां जाता है, मालूम नहीं लगता उपर से आज तो मने बिल्कुल खबर ही नहीं हुई। चलो, चलती हूँ आज अगर पगार मिल गई तो जैसे हम लोगन ने सगरे देस को रंगा है, अपना घर भी रंग दूंगी। राशन भरवाऊंगी तो बच्चों के सूखे मुंह पर चमक आजागी... रंग भर जांगे हम पर भी।' शगुन की बात के साथ ही दोपहर की एक घंटे के लिए जमने वाली बैठक समाप्त हो गई। बगीचा अगली दोपहर तक के लिए बेरंग हो गया।—दिल्ली, ईमेल: yvandana184@gmail.com

मीडिल मैन



वन्दना यादव

वह सर्दियों की रात थी। हाँ, मोबाइल में दिख रहे समय के अनुसार यह वक्रत देर शाम से आगे बढ़ कर पहले पहर की रात में ढल चुका था। मैं घर पहुंचने की बैचेनी में बार-बार समय देख रही थी। पन्द्रह मिनट पहले घड़ी में दस बजने के बाद समय अब भी लगातार आगे बढ़ रहा था। महानगर की रौशनियों में देर

रात तक दिन का भ्रम बना रहता है। लोगों की भीड़ में अलग-अलग तरह की आवाजों के शोर से कान बौरा जाते हैं, और उजाले में आँखें चौंधियाई रहती हैं। रौशनाई से ज़रा सा दूर होते ही डरावने अंधेरे घेरने लगते हैं। उस दिन यह सब इसी स्वरूप में महसूस हुआ। अंधेरा पूरी दहशत के साथ मेरे आस-पास फैल गया था।

डर, रोमांच और प्यार... पहली-पहली बार हर अनुभव नया लगता है। यह पहली बार था कि मुझे लौटने में इतनी देर हुई। अंधेरा घिर आने के बाद बिल्कुल अकेले इस तरह लौटने का वह रिकॉर्ड, उस शाम के बाद दोबारा नहीं टूटा।

रात साढ़े दस बजे के करीब मैं नियमित दिनचर्या से तीन की घंटे की देरी से मैट्रो से उतरी। गहराते कोहरे के बीच इक्का-दुक्का सवारियों में अकेली महिला होने के कारण मैं ज्यादा आत्मविश्वास दिखा रही थी। मैट्रो के किसी कोच से एक बेफिक्र सा युवा उतरा, और मेरे साथ-साथ चलने लगा। कुछ अन्य यात्रियों के साथ मैं भी यंत्रवत सभी चरण पार करते हुए मैट्रो स्टेशन के बाहर पहुँच गई। कुछ सवारियों ने पार्किंग में खड़े अपने वाहनों का रूख कर लिया था। मुट्ठीभर लोगों को घर ले जाने के लिए उनके परिवारजन मौजूद थे। मेरे जैसे सार्वजनिक परिवहन पर आश्रित लोग किसी सवारी के पहुंचने का इंतज़ार करने लगे। लगातार बढ़ती धुंध में दृश्यता ज़ीरो से कुछ डेसीमल ऊपर रही होगी। कुल मिलाकर मंज़र कुछ अलग तरह का बन गया था।

कोहरे वाली रात में अकेले खड़े होकर सवारी का इंतज़ार करने की कल्पना बहुत भयानक थी। लोगों की उपस्थिति से मुझे कुछ तसल्ली मिल रही थी। मगर जितने लोग वहाँ थे, उनका पुरुष होना डरा रहा था। हाँ, मौसम इस तरह का भी हो सकता था, जिसमें गुच्छों में उतरती धुंध बादल बन कर हर शै को अपने घेरे में ले लेने को आमदा थी। पच्चीस-तीस वर्ष पहले यदि इस मौसम में किसी का इंतज़ार कर रही होती, तब शायद मैं रूमानीयत भरी खुमारी में डूब जाती मगर उस दिन मुझे सुरक्षित घर पहुंचने की चिंता सता रही थी।

सर्दी की ऐसी मार उसी दिन महसूस हुई। जहाँ ऑटो रिकशा की भीड़ लगी रहा करती थी, इस समय वह जगह सुनसान थी। मुझे अपने घर पहुंचने का कोई रास्ता नज़र नहीं आ रहा था। घर से किसी का मुझे लेने आने का इंतज़ाम करीब दस वर्ष पहले ख़त्म हो गया था। इन दिनों घर के दरवाज़े पर लटके ताले के सिवा किसी को मेरे लौटने का इंतज़ार नहीं रहता।

मैट्रो स्टेशन के बाहर हम पाँच लोग सवारी के इंतज़ार में खड़े थे। सबकी नज़रें एक-दूसरे से टकरा रही थीं। मुझे लगा कि वे मुझे बेचारी साबित करने पर तुले हैं। इसी दौरान वह बेफिक्र सा युवा अचानक मेरे पास आ कर खड़ा हो गया। बिना कुछ बोले, वह मेरे साथ खड़ा रहा। कानों पर मोटे-मोटे हैडफोन के आकार का ठंडक से बचने का इंतज़ाम लगाए वह कोई गीत गुनगुना रहा था। गीत ज़रूर अंग्रेज़ी रहा होगा क्योंकि उसके सुर मेरे लिए अनजाने थे।

मैं टैक्सी मंगवाने के बारे में सोच रही थी मगर मेरा अनुभव ऐसा करने से मुझे रोक रहा था। दिन के उजाले में टैक्सी आने में लंबे समय तक इंतज़ार करवाती है, फिर यह तो रात का वक्रत था। मैं उपाय सोच ही रही थी कि उसी समय दूर से एक ऑटो रिकशा की आवाज़ सुनाई दी। कुछ ही पलों में कोहरे के बीच से एक मद्धम जलते बल्ब को अपनी ओर आते हुए पाया।

ऑटो ठीक से रूका भी नहीं था कि साथ खड़े लोग उसमें सवार हो गए। हड़बड़ी ऐसी, जैसे बैठने की जगह ख़त्म होने वाली है। मैं धक्का-मुक्की से बचने के लिए पीछे रूक गई। ऑटो के रूकने

पर उस बेफिक्र-से युवा ने अपने साथ वाली सीट पर हाथ से संकेत करते हुए कहा, 'प्लीज सिट'

यह शहर पिछले पैंतीस वर्षों से मेरा स्थाई निवास स्थान है। ऑटो रिक्शा में सवार शहरी, मोबाइल में व्यस्त थे। एक किसी से फोन पर बात कर रहा था। बाक़ी दो लोग यू-ट्यूब का व्यापार बढ़ा रहे थे। मैं ज़ाहिर तौर पर अपनी सुरक्षा को ले कर कुछ ज़्यादा ही चौकन्नी थी। ऐसे में इयरफोन लगाए रखने का ख़तरा मोल नहीं ले सकती थी। जबकि मेरे साथ बैठा युवा, मोबाइल की दुनिया से बेफिक्र था। वह अपनी धुन में मस्त, लगातार कुछ गुनगुना रहा था। दिल्ली की ठंड के मुकाबले उसके कपड़े साधारण थे। उसने शुरुआती सर्दियों के लिए माकूल पतली-सी स्वेटशर्ट पहन रखी थी। नई बसावट वाले उपनगर की टूटी-फूटी सड़क पर बैटरी रिक्शा अपनी गति से मंज़िल की ओर बढ़ रहा था। ऐसे में वह जिस धुन को गुनगुना रहा था, उसके सुर ऑटो की गड़गड़ाहट के उतार-चढ़ाव के साथ कदमताल कर रहे थे। ठंड को पूरी तरह से अनदेखा करने के लिए उसने अपने वजूद पर संगीत ओढ़ लिया था।

समय पर घर लौट गई होती, तब मेरे कपड़े मौसम की मार के लिए प्रयाप्त थे। मगर इस समय ठंड से हालत खराब हो रही थी। दिन में जो रास्ता ठीक-ठाक सा लगता था, कोहरे की रात में वही, बहुत लंबा हो गया था। उस समय तक दो सवारियाँ अपनी-अपनी मंज़िल पर उतर गई थीं। इस बार मेरा घर आने वाला था। मगर वयस्कता की उम्र पार कर चुके तीसरी सवारी को अपने घर पहुंचने की जल्दी थी। उसे अपने साथ बैठी महिला सवारी की सुरक्षा से कोई सरोकार नहीं था। हादसा हो जाने पर कैडल मार्च निकलने के आदी शहरवासी को, महिला सुरक्षा से कुछ लेना-देना नहीं था। ऑटो चालक को उसने जो कारण बताया, उसके बाद मेरा चुप हो जाना एकमात्र विकल्प था। सीवर लाइन डालने के लिए खोद कर छोड़ दी गई सड़क पर लड़खड़ाता हुआ ऑटो रिक्शा, मेरे घर से विपरीत दिशा में दौड़ पड़ा। मेरी विवशता देख कर उस बेफिक्र युवा की आँखों में फिक्र के बादल उमड़ आए।

'मै'म आपको एड्रेस पर ड्रॉप करके मैं घर जाएगा। ' उसने कहा।

'मैं अपने आप चली जाऊँगी। आप अपना एड्रेस बता दो। जिसका घर पहले आएगा रिक्शा उधर ही पहले जाएगा। '

'मै'म आप मेरा मम्मा जैसा है। मैं ऐसी रात में मेरी मम्मा को अकेला नहीं छोड़ेगा। ' इस बार मैंने उसके चेहरे को गौर से देखा, वह भारतीय नहीं था।

'तुम कहाँ से हो?' यह स्वाभाविक जिज्ञासा थी।

'म्यांमार से मै'म। ' उसने संक्षिप्त उत्तर दिया।

'यहाँ कैसे आए?'

'काम से मै'म। ' उसके बोलने के तरीके से लगा कि वह कहना चाहता था, मेरी उम्र से अंदाज़ लगा लो, यह काम करने की उम्र है, वही करने आया हूँ।

'क्या करते हो?'

'अभी काम सीख रहा है। ' स्ट्रीट लाइट की रौशनी में मैंने उसकी आँखें देखीं, छोटी-छोटी सी मगर ज़िंदगी से लबरेज़ आँखें।

'मेरा अंकल एडमिट है यहाँ हॉस्पिटल में। '

'क्या हुआ उन्हें?'

'हार्ट का प्रोब्लम है मै'म। सर्जरी करना है। ट्रांस.... ट्रांसप्लांट करेगा डॉक्टर। ' उसे सही शब्द समझाना आ गया था इस बात की खुशी उसकी आवाज़ से होती हुई मुझ तक पहुंच रही थी।

'कौनसे हॉस्पिटल में हैं?' उसने जो नाम बताया उसे सुनकर मेरी उत्सुकता बढ़ गई। मेरे सवाल के जवाब में उसने वही नाम दोहरा दिया जो पहले बताया था।

'तुम म्यांमार से सीधे यहां कैसे पहुंचे? इंटरनेट पर सर्च किया था हॉस्पिटल के बारे में या किसी ने भेजा है?'

'यस मै'म, मेरा कंट्री से सब इंडिया आते हैं इलाज के लिए। '

'क्या तुम्हें मैडीकल टूरिज़्म के बारे में मालूम है?'

'यस। ' उसने आत्मविश्वास के साथ जवाब दिया।

'तुम्हें पक्का पता है ना कि तुम्हारे अंकल को इसी इलाज की ज़रूरत है। कहीं दोनों देशों के लोग तुम्हें बेवकूफ ना बना रहे हों। '

'हमारे कंट्री में पहले चेक करवाते है। वो रेफर करता है तब इंडिया आते है। ' उसने अपनी ओर से स्थिति की पूरी तस्वीर खींच दी।

'मै'म, आप कोई जॉब करते हो?'

'क्यों?' महानगरीय लोगों में सामान्यतः दो आदतें पाई जाती हैं। पहली, सामने घटित हो रही घटना को नज़र अंदाज़ कर देना और

दूसरी, सवाल के बदले में सवाल पूछना। अब मैं भी महानगर हो गई हूँ, इसीलिए बिना जांच पड़ताल किए, जवाब कैसे देती!

‘आपको पहले नहीं देखा। मैं आता रहता है इसी टाईम पर।’ उसने घड़ी देख कर बताया।

‘तुम कबसे हो यहाँ?’ हम भारतीयों की सवाल करने की आदत सामने वाले की जड़ों तक पहुंचे बिना रूकती नहीं।

‘छः महीना से।’

‘सर्जरी हो गई तुम्हारे अंकल की?’

‘हो गई।’

‘तुम वापस कब जाओगे?’ हमारी साथी सवारी को ऑटो ने उनके पते पर छोड़ दिया था। रास्ते का अंदाज़ लगाते हुए अब ऑटो मेरे घर के लिए चल पड़ा। कोहरे का आलम यह था कि अब एक फुट की दूरी तक देखना असंभव हो गया था। टूटी सड़कों का जंजाल ना होता तो उस दिन मैं बादलों में विचरण करने का आनंद उठा लेती। मगर अफसोस कि भयंकर ठंडक झेलने के बावजूद मुझे वह सुख नहीं मिला जो हिन्दी फिल्मी नायिका को बादलों में उड़ने जैसा महसूस करवा देता है।

धुंध और धरातल के हालात से सामंजस्य बैठते हुए हम आगे बढ़ रहे थे। इसी बीच मैंने पूछा, ‘दिल्ली घूमे तुम या पूरा समय हॉस्पिटल में रहते हो?’

‘देखा है मै’म। खाना भी खाया यहाँ का।’ उसने खुश होते हुए बताया।

‘अच्छा! तुम्हें खाने में सबसे अच्छा क्या लगा?’

‘मै’म आपके दिल्ली का बटर नान और पनीर ‘टू मच’ अच्छा है पर उसे ‘टू मच’ खा नहीं सकता।’ बताते-बताते वह हँसने लगा। हँसते-हँसते उसके मुँह में पानी आ गया। कुछ पल रूक कर उसने कहा, ‘मेरा एक और अंकल का सर्जरी होने है। ये लोग रिटर्न जा रहे हैं, मैं यहीं रहेगा।’

‘ये लोग तुम्हारे अंकल है या तुम यही बिजनेस करते हो?’ इस बार का वार, लुहार के हथौड़े वाला था।

‘ये अंकल है पर अब मैं यहीं रहेगा और काम सीखेगा।’

‘क्या काम सीखने वाले हो?’

‘मिडिल मैन! मैं मिडिल मैन बनेगा।’ उसने यक़ीन के साथ कहा।

‘यह मीडिल मैन क्या होता है?’ उस के कहे शब्दों को उसी अंदाज़ में बोलते हुए मैं मन ही मन मुस्कुरा रही थी। वैसे तो हर शब्द को बोलने का उसका खास अंदाज़ था मगर मीडिल मैन जिस आत्मविश्वास से वह कह रहा था, मेरे शब्दभंडार में उसने नया शब्द जोड़ दिया था।

‘देखो हमारे मीडिल मैन और आपके देश वाले मीडिल मैन ने हमको ऑप्शन दिया कि इस ट्रीटमेंट के लिए इंडिया के कौनसे हॉस्पिटल में इलाज करवाना है। एकचूली बताया कि ये वाले हॉस्पिटल ठीक है, तो हम यहाँ आया।’ उसने समझाया।

‘इसमें तुम क्या सीखोगे?’

‘मै’म, मेरे कंट्री का मैं सब कुछ जानता है। यहाँ रह कर आपके देश का सीख रहा है। थोड़ा टाईम में देखना मै’म, मैं सब सीख जाएगा। खूब रूपीज़ कमाएगा मै’म। मैं रूपीज़ कमाना चाहता है, खूब सारे रूपीज़। बैंक होम, फेमली को भेजेगा वो सारे रूपीज़।’ अब तक उसके बोलने का अंदाज़ और शब्दों को नया स्वरूप देना मुझे मुस्कुराने पर बाध्य कर रहे थे मगर इस बार जो उसने कहा, उसे सुनकर मैं सोच में पड़ गई।

‘कितने लोगों का इलाज करवाओगे तुम?’

‘मै’म मरना कौन चाहता है? सब जानते हैं कि मरना है फिर भी मरना नहीं चाहते।’ इतना कह कर वह ठट्ठा कर हंसा और देर तक हंसता रहा।

‘मै’म ओल्ड मैन भी लोन पर रूपीज़ ले कर इलाज करवाने दौड़ता है। कहीं भी दौड़ता है। हमारा लोग इंडिया आते हैं। मैं लाएगा उनको इंडिया। मैं मिडिल मैन बनेगा। आप जानते हैं मीडिल मैन क्या होते हैं?’

‘नहीं, तुम बताओ।’ मैडीकल टूरिज़्म के बारे में मेरी जानकारी ठीक-ठाक थी इसके बावजूद मैंने पूछा।

‘मिडिल मैन का मीनिंग है मेडीकल डीलर, मैं वही बनेगा।’ उसने कहा।

‘तुम्हारी फेमिली में कौन-कौन है, रूपए किसको भेजोगे?’

‘मेरे पेंट्स है मै’म। हमारा फार्मिंग का लैंड है जेसे आपके देश में खेती होता है, वहाँ भी होता है।’

‘ऑटो रोको, यही है मेरा घर।’ बातचीत में धुंआ-धुंआ सा माहौल कब पार हुआ, खबर ही नहीं हुई।

‘मै’म प्रोबलम नहीं है तो अपना नंबर शेयर करेंगे?’ शहरी संस्कृति बेदिल नहीं होती। जो अपना घर रास्ते में पीछे छोड़ कर अकेली महिला को घर तक छोड़ने आए, उससे नंबर शेयर ना करें, यह नहीं हो सकता था।

मैं कुछ दिन थोड़ी सतर्क रही कि शायद वह बेवजह संदेश भेजेगा या फोन करेगा मगर ऐसा नहीं हुआ। कभी-कभार वह मेरे व्हाट्सअप स्टेटस देखने आता। मगर मैं हिन्दी भाषा की दीवानी, उसे कुछ हासिल नहीं हुआ होगा। धीरे-धीरे यह किस्सा मेरी याददाश्त में रहा मगर जीवन से खत्म हो गया।

इसी बीच कोरोना के कारण हालात जटिल बन गए। जीवन घरों में कैद हो गया। बदले हालात में एक अंतरराष्ट्रीय नंबर से व्हाट्सअप संदेश मिला।

‘मै’म में कॉल कर रहा हूँ, आप प्लीज फोन उठाएं। ‘ संदेश करने वाले की तस्वीर पहचानी सी लगी परन्तु नाम याद नहीं आ रहा था।

‘हैलो मै’म, मैं अली बोल रहा है म्यांमार से। ‘ बस इतना ही परिचय चाहिए था। मुझे सर्द रात में फ्रिश्ते-सा युवा याद आ गया।

‘हैलो अली, कहाँ हो आजकल?’

‘मै’म, मेरा मदर एक्सपायर हो गया था तब मैं घर आया था फिर यह सब हो गया। फ्लाईट बंद हो गया। अब मेरा फादर भी नहीं रहा। ‘

‘ओह, जानकर बहुत दुख हुआ बेटा। ‘ इस बार ‘बेटा’ संबोधन अंतर्मन से निकला था।

‘मै’म जल्दी ये सब ठीक होने वाला है। फ्लाईट शुरू होते ही मैं इंडिया आऊंगा। अब उतने पैसे की जरूरत नहीं है। यहाँ कोई नहीं बचा मेरा, अब सिर्फ अपने लिए कमाऊंगा। मै’म, विंटर से पहले सब ठीक हो जाएगा, मैं आ रहा है मै’म। मेरा मम्मा नहीं रहा.. मैं एकबार आपसे मिलना चाहता है, आ जाऊँ?’

‘हाँ बेटा, हालात ठीक हो जाते हैं तब आना। ‘

बात खत्म हो गई थी। मोबाइल मैंने हाथ में पकड़ रखा था। बरसात के मौसम की आर्द्रता में जब पहने हुए कपड़े शरीर की नमी से गीले हो कर त्वचा पर चिपक जाते हैं, उसी मौसम में अचानक से मुझे बादलों के गुच्छों ने आ घेरा। चिपचिपा मौसम एकाएक बदल गया... हर ओर ठंडी हवा बहने लगी। –दिल्ली, ईमेल: yvandana184@gmail.com

टिप्पणी



श्री अशांजल यादव

‘कितने मोर्चे’ उपन्यास को एक सैनिक के जीवन की समसामयिक पारिवारिक परिस्थितियों के केंद्र में रखकर लिखा गया है। इसकी शुरुआत ‘बर्फ की चादर’ में लिखा गया है कि — ‘परेशानियों की वजहें सबकी अलग-अलग होती हैं पर खुश रहने के कारण सबके एक जैसे होते हैं’ लेकिन असल ज़िंदगी में देखा जाए तो परेशानियों की वजहें सबकी अलग-अलग होती हैं और खुश होने की वजहें भी क्योंकि कुछ लोगों को रिश्ता, प्यार और इंसान से बड़ा पैसा होता है।

इसमें स्कूल के बाद कॉलेज जीवन का भी ज़िक्र है जो कि हमें आज के परिवेश से जोड़कर रखता है। इस उपन्यास में सबसे अच्छी बात यह है कि अकेलेपन से हर इंसान टूट जाता है लेकिन इसमें रीना ने अपने अकेलेपन को अपनी ताकत बना लिया है। ‘कितने मोर्चे’ उपन्यास सैनिक जीवन को दर्शाता हुआ उपन्यास के क्षेत्र में नया प्रयोग है उम्मीद है आगे चलकर ऐसे साहित्य को भी एक विशेष स्थान मिलेगा, जिसमें सैनिकों का परिवार के प्रति त्याग और बलिदान को बताया जाए।

— विद्यार्थी, हिंदी विभाग, पंजाब केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बठिंडा

'एक रिश्ता... जो मुझ में बहता है...'



रवि यादव 'रवि'

बड़ी बहन वन्दना जी, मेरे लिए टूटते
हौसले की साँस और चोटिल सपनों का
मरहम हैं।

कलाकार और खास तौर से
लेखक होने के कारण मैं स्वयं को शब्दों
का धनी महसूस करता हूँ मगर जब
भी वन्दना जी के साथ अपने रिश्ते को
परिभाषित करना चाहा है तो वो शब्द
तलाश नहीं कर पाया जिन्हें लिखकर

महसूस करूँ कि मैंने उनके और अपने रिश्ते को पूरा-पूरा लिख दिया
है।

'लिखना चाहा जब कभी, तेरा मेरा प्यार।

नाकाफ़ी पड़ने लगा, शब्दों का भंडार।।

उनका साहित्य संसार इतना समृद्ध और विस्तृत है कि उस
पर कुछ लिखने के लिए मेरा ज्ञान अभी बहुत छोटा है। मगर हाँ
उनके व्यक्तित्व और लेखन प्रक्रिया पर मैं बहुत कुछ लिख सकता हूँ
क्योंकि मैंने बहुत करीब से उन्हें देखा है। वन्दना जी एक साहित्यकार
से पहले मेरी नज़र में एक जिंदी और विद्रोही इंसान हैं।

जिद इस बात कि वो हार नहीं सकती और विद्रोह समाज की
हर उस बात से जो जिन्दगी को मुश्किल बनाती है, बदरंग बनाती है।

वन्दना जी से मेरा परिचय किसी ने नहीं करवाया बल्कि हम
दोनों ने स्वयं एक दूसरे को तलाशा। दिल्ली और मुंबई दो शहरों के
बीच बिछी दूरियों के बावजूद, पहली मुलाकात से आज तक हम न
जाने कितनी बार मिले, मुलाकात का कोई मुद्दा तय किये बिना मिले
और उन मुलाकातों में बहन से आगे जाकर मैंने एक साहित्यकार व
विपरीत परिस्थितियों में पर्वत की तरह खड़ी रहने वाली वन्दना यादव
से मुलाकात की। ना जाने मैं इसे बदकिस्मती कहूँ या खुशकिस्मती
मगर हाँ, मैंने उन्हें आँसूओं में घुलते भी देखा मगर हर बार आँसूओं
में घुलकर मिट जाने से ठीक पहले, हर मुश्किल को पीछे धकेल
कर वो जिन्दगी से आँखे मिलाकर ये कहने से नहीं चूकती कि 'देख
जिंदा हूँ मैं, लड़खड़ाई हूँ मगर गिरी नहीं' चाहे कोई सामाजिक,
पारिवारिक जटिल परिस्थिति हो या उनके खराब स्वास्थ्य से पैदा हुए

डरावने हालात, वन्दना जी की मुस्कुराहट और हौसले को झुका नहीं
पाए। मुझे कई बार लगा कि अब शायद लेखन कम हो जाएगा या
कुछ समय के लिए रुक जाएगा मगर नहीं, किसी नई कहानी या
उपन्यास की योजना के साथ उनका फ़ोन आ जायेगा 'भाई मुश्किलें
जब अपने मन का कर रही हैं तो सोच रही हूँ कि मैं भी अपने मन
का कर लेती हूँ, ये लिख डालती हूँ और फिर वही हर बार का
सिलसिला, 'सुनो.. लिखना शुरू कर दिया, सुनो..आधे से ज़्यादा पूरा
हो गया, सुनो... कब आ रहे हो भाई दिल्ली, सोच रही हूँ विमोचन
तुम्हारे सामने ही रखूँ।'

मैं एक नहीं उनकी अनेक पुस्तकों की लेखन प्रक्रिया का इसी
तरह हिस्सा रहा हूँ। यहाँ एक और बात पूरी ईमानदारी के साथ कहना
चाहता हूँ कि उनके लेखन सफ़र का साक्षी होना वैसे मेरे लिए गर्व
की बात तो है मगर उस सफ़र का हिस्सा होना या न होना, ये मेरा
चुनाव नहीं है, उनका अधिकार है मुझपर। रात के दो बजे हों या दिन
के तीन, मैं घर में सो रहा हूँ या स्टूडियो में शूटिंग/रिकॉर्डिंग कर रहा
हूँ, वो समंदर किनारे मिट्टी का घर बनाती किसी अति उत्साही बच्ची
की तरह फ़ोन करेंगी 'भाई सुनो अभी-अभी ये लिखा सुनो कैसा है'
उन्हें पसंद नहीं कि वो मेल कर दें और मैं पढ़ूँ, उन्हें सुनाना पसंद है
और मुझे उनसे सुनना। 'शुद्धि' उपन्यास का कोई भी बड़े से बड़ा भाग
हो 'ये इश्क है!' की प्रकृति प्रेम में भीगी कविताएँ हों या 'कितने मोर्चे'
उपन्यास के चौधरी विहार में घटती घटनाएँ, मैंने घंटो उन्हें वन्दना जी
से फ़ोन पर सुना है।

सच बात तो ये है कि किसी सृजनकर्ता से उसके सृजन को
सुनना एक ऐसा गर्वीला अनुभव है जो हर किसी के नसीब में नहीं
होता। मैं जब वन्दना जी की पुस्तकों से गुज़रता हूँ तो वन्दना जी को
सिर्फ पढ़ता नहीं हूँ बल्कि पढ़ने के दौरान उनकी पुस्तकों के पन्नों पर
स्वयं को बिखरा हुआ पाता हूँ। किसी लेखक के रचना संसार की
गलियों, मोड़ों और रास्तों पर स्वयं को खड़े देख पाना एक अद्भुत
आत्मिक सुख है जिसे पूरा-पूरा लिखा नहीं जा सकता। मैं, और
वन्दना जी की दोनों बेटियाँ, शिखा और शिवानी (मुनमुन) इस सुख
को महसूस कर सकते हैं।

ऐसा नहीं कि वन्दना जी लिखना शुरू करती हैं और बस लिख
जाती हैं। मैंने उन्हें कई-कई दिन या महीनों भी किसी मोड़ पर अटके,

ठहरे देखा है जब उन्हें समझ नहीं आता कि आगे कहानी को कैसे बुना जाए। मगर एक बात जो उन्हें मेरी नज़र में विशेष बनाती है वह यह भी है कि उन्हें कोई जल्दी नहीं होती उस मोड़ से आगे बढ़ जाने की, जल्दी से उस कहानी को एक आकार देकर पुस्तक प्रकाशित कराने की। उनका हमेशा मानना रहा है कि 'हम अपने लेखन से पहचाने जाते हैं, और हम जो आज रचते हैं उसके द्वारा हम दशकों, सदियों बाद भी तौले जाते हैं। सो ज़रूरी जल्दी से लिख डालना या ज़्यादा रच डालना नहीं है, बल्कि ज़्यादा बेहतर लिखना जरूरी है।'

अक्सर दो 'लेखक टाइप' लोग मिलते हैं तो उम्मीद की जाती है कि कुछ गंभीर बातें और विचार विमर्श होगा मगर हमारे रिश्ते का एक चेहरा और भी है। हमने जब भी बातें की हैं, तो मुलाकात के समय का एक बड़ा हिस्सा तो सिर्फ हंसी मज़ाक और टांग खिंचाई में गया है। दोस्तों की, अपनों की, कोई ना मिले तो एक दूसरे की ही टांग खिंचाई। सीधी बात से तो शायद ही हमने अपनी बातें कभी शुरू या समाप्त की होंगी। वन्दना जी के व्यक्तित्व का यह एक ऐसा पहलू है जो हमारे रिश्ते में ऊर्जा का संचार करता है, हमें दुनियावी अवसादों में घिरने नहीं देता और रिश्ते को मजबूती देता है।

मुझे याद है कि 'कितने मोर्चे' विमोचन समारोह के संचालन के लिए वन्दना जी ने मुझे कुछ इस तरह बाइज़जत आमंत्रित किया था जिस तरह आज तक किसी ने नहीं किया। उन्होंने फोन किया 'भाई मैं चाहती हूँ संचालन तुम करो' मैंने कहा 'वन्दना जी अगर शूटिंग नहीं हुई तो ज़रूर करूंगा।' वो तुरन्त पूरे अधिकार से बोलीं 'पूछ नहीं रही भाई, बता रही हूँ कि तुम ही करोगे। अब तुम तय कर लो ऐसे ही कर लोगे या पिट कर करोगे' बताइए ऐसे कौन किसी को आमंत्रण देता है। परिणामस्वरूप मैं कॉन्स्टीट्यूशन क्लब के 'मावलंकर हॉल', रफी मार्ग दिल्ली में संचालन कर रहा था और वन्दना जी अधिकारपूर्ण मुस्कान के साथ, मेरे लिए दुआओं व स्नेह/आशीर्वाद से भरी मुझे देख रही थीं।

वैसे उम्र में वो मुझ से बड़ी है मगर हम आज तक तय नहीं कर पाए कि हम में बड़ा कौन है। उन्होंने हमेशा कहा कि भाई तुम कभी छोटे भाई, कभी बेटे तो कभी पिता जैसे लगते हो। मुझे भी वो कभी बहन, कभी मित्र, कभी माँ तो कभी छोटी सी नादान बच्ची जैसी लगती हैं। उन्हें ये अधिकार है कि भरी महफ़िल वो मेरे कान खींच सकती हैं और अनेक मौकों पर मैं उनके साथ ऐसे बर्ताव करता हूँ जैसे उन्हें कुछ नहीं आता और मुझे ही उन्हें समझाना और सम्हालना होगा।

उनसे मुलाकात के बाद मैं बतौर अभिनेता या निर्माता जिन फ़िल्मस या सीरियल का हिस्सा रहा, उनकी पूरी जानकारी वन्दना जी के पास रही। सिर्फ जानकारी ही नहीं मेरे बनाये हर प्रोजेक्ट की

कहानी चुनाव से लेकर कास्टिंग, किरदारों के लुक, गीत, संगीत, गायक, बैकग्राउंड म्यूज़िक मतलब फाइनल प्रोडक्ट तक वो हर पड़ाव की साक्षी और निर्णायक मंडल का अभिन्न हिस्सा रहीं।

कहते हैं रिश्ते ऊपर से तय होकर आते हैं, वन्दना जी मेरा वही रिश्ता हैं। जीवन सफ़र में अगर उनसे मुलाकात न हुई होती तो ऐसा तो नहीं कि सफ़र पूरा न होता, मगर हाँ इतना खूबसूरत ना होता। आपके होने से जीवन मैंने जीवन में स्नेह, अपनापन, लाड, उड़ान, दायरे, अधिकार, कर्तव्य जैसे अनेक क्रीमती एहसासात को अपना करके जिया है वन्दना जी। आप रहना यूँ ही, यूँ ही हक़ जताना, सम्हालना, सम्हालना, खुशी व ग़म साझा करना। यूँ ही सतत एक सहित्यलोक का निर्माण करते रहना जिसमें आने वाले कल में विचरण करते हुए दुनिया सम्मान से कहे कि 'देखो ये सूरज की तरह चमकता हुआ वन्दना यादव का साहित्य संसार है' और मैं गर्व से कहूँ कि -

'ये मेरी बड़ी बहन वन्दना जी का सहित्यलोक है।'

एक रिश्ता जो मुझमें रहता है
एक रिश्ता जो मुझमें बहता है...

वो बन्धनों सा कसता है
वो अंबर जैसा खुलता है
वो अल्ट्रहड है बचपन जैसा
गंभीर है किसी प्रवचन जैसा
वो जब अपने ढाई अक्षर का हक़ जताता है
तो वामन अवतार के दो क़दम सा
मेरी साबुत दुनिया को
अपने अधिकार में ले लेता है
निभाता है फ़र्ज़ अपने तो यूँ निभाता है
कि मेरे जीवन में कोई मौसम हो
उसका हाथ मेरे काँधे पे आता है।
जो दुनिया को दिखाई दे
मेरी तो अमीरी हैं वो
मुझमें, मुझको ज़िंदा रखे जो
ऐसी मलंगई, ऐसी फ़कीरी है वो

एक रिश्ता...जो मुझमें रहता है
एक रिश्ता...जो मुझमें बहता है।

—साहित्यकार, एक्टर, फिल्म प्रोड्यूसर, मुंबई
Email : ravipictures1999@gmail.com

मेरी नज़र में वन्दना यादव



अमृता बेरा

दोस्ती के बारे में और क्या कहा जाए, एक बे-गरज़ लगाव का रिश्ता है, ताउम्र मुहब्बत की खुशबुएँ बिखेरता जाए। वन्दना यादव ऐसी ही एक ज़हीन दोस्त हैं, जो अपने दोस्तों की ज़िंदगियाँ मुहब्बत से रोशन रखती हैं, और तभी हम एक अरसे से अच्छे दोस्त हैं। वन्दना यादव के एक मुकम्मल लेखिका के रूप में उभरने से पहले, मैंने

उन्हें एक प्रिय मित्र के रूप में पाया है। यह बात साल 2011-12 की है, जब मैं पहली बार उनसे मिली तो उनका गरिमामय व्यक्तित्व, उनकी सौम्य मुस्कान, और खुशदिल मिज़ाज ने मेरा मन मोह लिया। उनका आर्मी बैकग्राउंड होने से, नाहक ही मेरे मन में एक छवि थी कि आर्मी वाले कुछ ज़्यादा ही अनुशासन प्रिय और थोड़े रूखे और कड़क अंदाज़ के होते हैं और भी कि वह हरियाणा से हैं। लेकिन, मेरी ग़लतफ़हमियाँ पहली बार ही ध्वस्त हो गईं। मैंने पाया कि वन्दना बहुत ही मीठे और कोमल लहजे में बोलती हैं, और वह बहुत सहज और संवेदनशील हैं।

उस दौरान हमलोगों का विभिन्न साहित्यिक कार्यक्रमों में काफ़ी आना-जाना था। हालांकि, उनका पहला काव्य संग्रह वर्ष 2007 में आ चुका था, लेकिन मैंने देखा कि वह एक संजीदा पाठक और उभरते हुए रचनाकार का जज़्बा लिए बहुत गंभीरता से साहित्यकारों को सुना करती थीं, साहित्यिक कार्यक्रमों, चर्चाओं में शामिल रहती थीं, और कि उनकी साहित्य में रुचि सिर्फ़ टाइम पास करने वाली नहीं थी। फिर हम अपने-अपने जीवन में व्यस्त होते चले गए और हमारा मिलना-जुलाना भी थोड़ा कम हो गया। इस दौरान वन्दना पढ़ने-लिखने में डूबी रहीं और उनकी हिंदी साहित्य में उपस्थिति निरंतर दर्ज होती रही। बहुत खुशी होती है देखकर कि इस दौरान उन्होंने इतना काम कर लिया। उपन्यास, कविता संग्रह, अनुवाद, मोटिवेशनल किताबें, नवाक्षरों के लिए, यात्रा वृत्तांत, इत्यादि। उनका उपन्यास 'कितने मोर्चे', जो कि एक अनछुए विषय, सैनिकों की पत्नियों के संघर्षों पर लिखा उपन्यास है, और 2022 में आया, सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग और मुखौटों में रहने वाले समाज का

बारीक चित्रण करता उपन्यास 'शुद्धि', दोनों बहुत चर्चा में रहे, एवं पाठकों द्वारा काफ़ी सराही गई हैं। कई किताबों का संपादन करने के साथ-साथ लंदन से ऑनलाइन प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'पुरवाई' में 'मन के दस्तावेज़' नाम का वह जो साप्ताहिक कॉलम लिखती हैं, उस में उनकी मन की सूक्ष्म अभिव्यक्तियाँ दिल को छूने वाली होती हैं। महसूस होता है कि एक संवेदनशील व्यक्ति जो रचनात्मक भी है, वह छोटी-छोटी चीज़ों को जीवन के हर पहलू के साथ जोड़ कर देखने में सक्षम होता है, उसकी सार्थकता को समझता है, उसे समादृत कर पाता है, और ऐसा व्यक्ति इन एहसासों के साथ एक माना-खेज़ सामाजिक जीवन जीता है। शायद इन्हीं कारणों से वन्दना एक दक्ष मोटिवेशनल स्पीकर और सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं।

आखिर मैं यही कह सकती हूँ कि मुझे गर्व है कि वन्दना यादव मेरी मित्र हैं। वे यूँ ही निरंतर सृजनशील रहें, सामाजिक दायित्व जो उन्होंने सहर्ष स्वीकारा है, उन्हें पूरी शिद्दत से निभाती रहें, लोगों के जीवन में सार्थक बदलाव लाने में उत्साही व समर्थ रहें, और इसी तरह दोस्तों की दोस्त बनी रहे। उन्हें मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

—लेखक, अनुवादक - दिल्ली,

Email : amrjha@gmail.com



वन्दना यादव एक विनम्र हृदय के अनगिनत मोर्चे



एस. आर. हरनोट

23 जून, 1975 की बात है। मैं शिमला के ऐतिहासिक रिज मैदान पर स्थित चर्च के पास से मॉल की ओर टहलते हुए जा रहा था। सूरज जैसे थका हारा देवदारुओं पर बिखरी रोशनी को समेटते हुए कामना देवी की पहाड़ियों से उतरने लगा था। तभी एक मीठी आवाज ने रोक दिया,

"आप हरनोट जी हो न..?"

सामने एक मुस्कराता हुआ खूबसूरत चेहरा था।

मैं कुछ उत्तर देता, वे सामने आकर खड़ी हो गईं।

मैं दिल्ली से वन्दना यादव। बच्चों के साथ आई हूँ घूमने। आपका फोन नंबर नहीं था। पर एक उम्मीद थी कि रिज या मॉल की भीड़ में आप जरूर मिलेंगे... और देखिए न मिल गए। मैं अभी भी हाथ जोड़े खड़ा था। तभी उनके साथी भी आ गए और वन्दना जी ने पहले उनसे परिचय करवाया और फिर उन्हें कहा कि आप सब घूमो मैं हरनोट जी के साथ थोड़ा टहलूंगी और यहीं कहीं बैठ कर बातें करूंगी।

लगा ही नहीं हम पहली बार मिल रहे हैं। सोशल मीडिया का यही एक लाभ होता है कि आपको पता ही नहीं होता कि उस आभासी संसार में कौन आ कर आपके बिल्कुल करीब बैठ गया है।

मैं और वन्दना जी रिज पर खूब टहलते रहे और फिर एक जगह बेंच पर बैठ गए। उन्होंने मेरी कई कहानियों का जिक्र भी किया और अपनी भविष्य की कुछ योजनाएं भी साझा की। उन दिनों वन्दना जी की रुचि हिमाचल प्रदेश की लोक कथाओं और लोक संस्कृति पर काम करने की थी। उन्होंने बहुत पढ़ा भी था। मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि मैं उनकी हर संभव मदद करूंगा।

इस मुलाकात के बाद वन्दना जी से फोन और मैसेंजर में खूब बातें होती रहती थीं। उनकी विनम्रता और अपनापन उनके इस संदेश से आप जान सकते हैं कि आज भी मेरे पास धरोहर की तरह सुरक्षित है,

"नमस्कार हरनोट जी,

एक मुकाम हासिल करने के बाद भी आपमें सादगी है, सरलता है, वो कहते हैं ना कि फल वाला वृक्ष ही झुकता है...।

थोड़ी सी देर की मुलाकात में आपसे जो बातें हुईं वे अविस्मरणीय हैं। आपकी लेखन साधना के बारे में जान सकी, लेखन के प्रति आपका जूनून जो कलम उठाने से पहले आपको विषय की गहरी पकड़ में यायावर बना देता है। मंदिरों पर आपके काम ने हिमाचल के मंदिरों के दर्शन से ही वंचित कर दिया... मेरे हिसाब से यह एक लेखक की असली जीत है कि किसी की कलम की ताकत से मठाधीश हिल जाएं। आपने उसी थोड़े से समय में मेरे परम्पराओं और ऐतिहासिक स्थानों पर काम करने के "ड्रीम प्रोजेक्ट" को ले कर जो उत्साह दिखया और हिमाचल से जुड़े इतिहास एवं परम्पराओं के बारे में मदद करने का विश्वास दिया, यह मेरे लिए बहुत बड़ा सम्बल बन गया है।

शिमला में कर्नल दीपक और उनकी पत्नी ने जो प्यार और सम्मान दिया, वह मैं कभी नहीं भुला सकूंगी, उन्होंने हर दिन के लिए सुबह से लेकर रात तक के कार्यक्रम पहले से बनाए हुए थे। इसीलिए "मॉल रोड" या "रिज" पर दोबारा नहीं आ सके। आपसे दोबारा ना मिल पाना मेरी व्यक्तिगत क्षति है। जल्दी ही आपसे संपर्क करूंगी, आप सपरिवार स्वस्थ रहें, प्रसन्न रहें और खूब - खूब लिखते रहें।

सादर। "

उसके बाद दिल्ली जाना हुआ। 17 अक्टूबर, 1976 को दिल्ली में श्रीमती जैन के आवास पर एक साहित्यिक कार्यक्रम था। यह एक अनूठा कार्यक्रम है जो आसपास की बहुत सी गृहिणियां घर में आयोजित करती हैं। वे किसी पसंदीदा लेखक की नई कृति की

20, 25 प्रतियां खरीद कर आपस में बांट लेती है। पढ़ती हैं और फिर उस किताब के लेखक को घर आमंत्रित कर लेखक और उस कृति पर विस्तार से बात होती है। इस तरह यह उस लेखक का भी सम्मान है और उस बहाने एक घरेलू गोष्ठी भी।

उस कार्यक्रम में शिमला से मुझे आमंत्रित किया था। वन्दना जी से बात हुई तो वे भी इसमें मेरे साथ चल पड़ी थी। एक शानदार और अनूठा आयोजन था वह। इस तरह इस दूसरी बेहद आत्मीय मुलाकात में उनकी रचनाशीलता पर भी खूब बातें हुईं। उन दिनों वे एक उपन्यास पर काम कर रही थीं। उससे पहले उन्होंने खूब कविताएँ लिखीं थीं जो न केवल अच्छी पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही थीं बल्कि कई संकलनों में भी छपी थीं। उसके बाद निरंतर उनका खूब स्नेह मिलता रहा।

कुछ दिनों बाद सूचना मिली कि उनका उपन्यास "कितने मोर्चे" प्रकाशित हो गया है। और उपन्यास मिल भी गया। एक बार पढ़ना शुरू किया तो पूरा पढ़ गया। कितनी बार आंखें भीगती रहीं थीं। वन्दना जी एक सैनिक परिवार की बहू हैं और उनके पति सेना में हैं। सैनिकों को पत्नियां अकेली-अकेली घर और क्वार्टरों में रहते हुए एक साथ कितने मोर्चों पर लड़ रही होती है, उपन्यास इन्हीं वेदनाओं को परत दर परत खोलता है। निःसंदेह इस थीम पर मैंने यह पहला उपन्यास पढ़ा था और एक अनूठे अपितु बहुत ही संवेदनशील तथा महत्वपूर्ण विषय को जानने का अवसर मिला था।

देश और देश की सरहदें जहां हमारे लगभग 15 लाख सैनिकों के हाथों महफूज हैं वहां तकरीबन इतनी या इससे कम गृहिणियों के हाथों ना केवल उन वीरों के घर आबाद है, बल्कि देश के भविष्य बच्चों की बेहतरीन पढ़ाई लिखाई भी उन्हीं के जिम्मे हैं। एक तरफ वे रोज पल-पल अपने वीर पति सैनिकों के जीवन के लिए प्रार्थनाओं में होती हैं, दूसरे पल अकेलेपन का दंश झेलते हुए अपनी घर गृहस्थी संभाले रखती है। साल में कभी कभार उनके सैनिक पति चंद रोज की यात्रा पर ही घर आ पाते हैं। उन गृहिणियों के समक्ष कितने मोर्चे हैं, कितनी लड़ाईयां वे अकेली-अकेली लड़ रही होती हैं... सोच कर मन स्तब्ध रह जाता है। ये वेदनाएं अकल्पनीय हैं, जिनकी व्याख्याएं करना संभव कतई नहीं है। ये किसी अज्ञात या जाने हुए भय के बीच का एक ऐसा जीवन है जो बाहर से बहुत संजीदा, खुशहाल, देश प्रेमी और आदर में लगता दिखता है परंतु भीतर एक ऐसी आग है जो उनकी जवानी, समय, भावनाओं को उपले की आग सा जलाती

रहती है..... उपला देखा होगा आपने.....भीतर भीतर जलता जाता है लेकिन बाहर से वैसा ही दिखाता है बिलकुल सही सलामत.... बस उसे छू कर देखिए.....एक राख का ढेर।

वन्दना जी कवि हृदय हैं... निरंतर लेखकीय संघर्ष से भरी हुई... कुछ न कुछ नया करते रहने का जुनून... और उसी जुनून ने उन्हें उपन्यास, कहानी, संस्मरण और कविताओं की कितनी कृतियां दी हैं... पुरवाई में उनके मन की बात तो सच में अब "मन की बात" की ही तरह लोकप्रिय है।

आप निरंतर सृजनशील रहें मेरी यही दुआएं हैं।

शिमला, हिमाचल प्रदेश

harnot1955@gmail.com

लघुकथा : वन्दना यादव

'आशीर्वाद'

'उस पेड़ को देखा तुमने?' हम भी जब बड़े हों जाएंगे तब हमारे पत्ते भी इतने ही सुन्दर दिखेंगे।'

'जब फल मेरी शाखों पर उगेंगे। धीरे-धीरे बड़े हो कर पकने लगेंगे और केसरिया-पीले रंग के हो जाएंगे उस समय उनकी मिठास मिश्री जैसी होगी।'

हुँह, और फिर यही माली बेदरदी से तुम्हारे शरीर पर उगे फलों को खींच-खींच कर तोड़ेगा। कितना दर्द होगा ना तुम्हें! मैं तो इस सबसे मुक्त हूँ। ना जन्म देने की फिक्क ना अपनों से बिछड़ने की तकलीफ।'

माली बरसों से चुपचाप बगीचे में काम करते-करते पेड़-पौधों की जुबान समझने लगा था। मादा पपीता को नज़रों से सहलाया और दूसरे शिशु पौधे को जड़ से उखाड़ कर उसने बगीचे से बाहर फेंक दिया।

एक बार फिर वह हाथ में खुरपी लिए चुपचाप अन्य वनस्पतियों की बातें सुनने में जुट गया। बगीचे की लताओं और पौधों ने राहत की साँस ली। दुनिया की यही वह एकमात्र जगह है जहाँ कन्या होने पर ही जीवित रहने का आशीर्वाद मिलता है।

—दिल्ली

वन्दना यादव: कर्तव्य एवं संवेदना के धरातल पर



शशि पाधा

एक सैनिक पत्नी में कर्तव्य परायणता एवं संवेदनशीलता की भावना होना स्वाभाविक है। उसका जीवन चुनौतियों से भरपूर होता है, वह अपने परिवार के साथ-साथ अपने सैनिक परिवार को भी माँ के समान ही स्नेह देती है। सैनिक पत्नी के जीवन में समय-समय पर ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जब उसे लम्बे

समय तक अपने पति से दूर अकेले ही अपने बच्चों का पालन-पोषण करना पड़ता है। साथ ही वह सुदूर सीमाओं पर देश रक्षा में तैनात पति को सदैव इसी विश्वास और आश्वासन के साथ भेजती है कि – ‘आप अपने दायित्व पर ध्यान दें और इधर मैं अपने घर के मोर्चे को सम्भाल लूँगी।’ यह सब मैं इसलिए लिख रही हूँ क्योंकि मैं स्वयं एक सैनिक पत्नी हूँ और वन्दना यादव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को अक्षरशः शब्दबद्ध कर सकती हूँ। मैं उनमें उस प्रत्येक कर्तव्यनिष्ठ, कर्मठ, ममतामयी सैनिक पत्नी को देखती हूँ जिनमें से एक मैं भी हूँ।

वन्दना जी के साथ मेरी कभी भेंट नहीं हुई। भेंट न होने का मुख्य कारण यही है कि मैं अमेरिका में कई वर्षों से रह रही हूँ। लेकिन मैं उनके लेखन से परिचित थी। अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका ‘पुरवाई’ में उनके साप्ताहिक कॉलम ‘मन के दस्तावेज़’ पढ़ते हुए उनके प्रेरक लघु लेखों में प्रस्तुत किये गये उनके विचारों से प्रभावित थी।

मैंने पहले ही कहा है कि पूरी भारतीय सेना एक पूरे परिवार की तरह है और हम सब एक दूसरे से किसी न किसी रूप से परिचित ही हैं। शायद वन्दना जी भी मुझे मेरे लेखन के माध्यम से ही जानती थी। एक दिन उन्होंने टेलीफोन पर बड़ी आत्मीयता के साथ बातचीत में बताया कि वह सैनिक पत्नियों की जिन्दगी से जुड़े हुए अनुभवों के आधार पर “जिंदगी और मौत के बीच” विषय पर कुछ सामग्री एकत्रित कर रही हैं ताकि उसे एक कहानी संग्रह के रूप में प्रकाशित किया जा सके। उन्होंने मुझे भी इस परियोजना से जुड़ने के लिए आमंत्रित किया, जिसे मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। मुझे प्रसन्नता

है कि उनके इस कहानी संग्रह में मेरी कहानी ‘अनावरण’ को भी स्थान मिला है। उसके बाद फोन पर सैनिक जीवन और छावनियों के वातावरण पर हमारी कई बार बात होती रही।

उनके व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों पर दृष्टि डालूँ तो उनका साहित्यकार होना महज एक संयोग नहीं हो सकता। उन्होंने अपने जीवन में जो भी देखा, भोगा और जीया है, उसे अपनी कृतियों के माध्यम से पाठकों तक पहुंचाने का उद्देश्य भी यही है कि वह हरेक से जुड़ना चाहती हैं और सैनिक जीवन के विभिन्न पहलुओं से जन-जन को परिचित कराना चाहती हैं। उनकी कृतियाँ ‘कितने मोर्चे’ एवं ‘सिक्किम-एक स्वर्ग और भी’, ‘जिंदगी और मौत के बीच’ मेरी इस बात की पुष्टि करती हैं। इनका लेखन जहाँ पाठक को चिन्तनशीलता की गहन अनुभूति कराता है, वहीं यायावरी लेखनी के माध्यम से अंगुली थाम कर प्राकृतिक सौन्दर्य से भी परिचित कराता है।

बच्चों में भाषा के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि लेखक बच्चों की मनःस्थिति को देख-परख कर उनके लिए वैसी ही रचनाओं का सृजन करे, जिसे वह समझें और आत्मसात कर सकें। वन्दना जी ने इस क्षेत्र में भी अपनी रचनात्मकता से सराहनीय योगदान दिया है। इसके साथ कविता, कहानी और आलेख - संस्मरण आदि विधाओं में भी उन्होंने बहुत सार्थक एवं संग्रहनीय साहित्य रचा है, जिससे बहुत से पाठक लाभान्वित हो रहे हैं।

अपने लेखन की अविरल यात्रा में उन्होंने बहुत सी मंजिलों को पाना है, भाषा और साहित्य को और भी समृद्ध करना है - ऐसा मेरा विश्वास भी है और मंगल कामना भी।

शुभकामनाओं सहित,

—वरिष्ठ साहित्यकार (यूएसए)

Email : shashipadha@gmail.com

राष्ट्रभक्ति, संस्कार और प्रेमगंगा का दूसरा नाम 'वन्दना यादव'



डॉ. पूजा कौशिक

साहित्यकार का जीवन एक अद्वितीय साहित्यिक यात्रा है, जिसमें वह अपने शब्दों के जादू और अद्वितीय विचारों से आत्म-पहचान का सफर तय करता है। उनकी रचनाओं के माध्यम से हम भी एक नई सोच के साथ जीना सीख सकते हैं और समाज में अच्छाई और सुंदरता का प्रचार-प्रसार कर सकते हैं। ऐसी ही

एक श्रेष्ठ साहित्यकार है आदरणीय वन्दना यादव जी।

लेखिका, मोटिवेशनल स्पीकर, और समाज सेविका वन्दना यादव जी की 'कितने मोर्चे' और 'शुद्धि' उपन्यास के साथ यात्रा वृत्तांत, कविता-कहानी और बाल साहित्य की लगभग एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आप आधा दर्जन से अधिक पुस्तकों की एडिटर रही हैं। 'पुरवाई' अंतरराष्ट्रीय पत्रिका में साप्ताहिक कॉलम लिखने वाली वन्दना जी आकाशवाणी पर रचना पाठ एवं समाचार-पत्र, पत्रिकाओं में मानसिक स्वास्थ्य, महिला अधिकारों और अन्य सम-सामयिक विषयों पर निरंतर लेखन कार्य करती रही हैं। यह कहना अतिशयोक्ति ना होगी कि अनेक वर्षों तक शिक्षण से जुड़ी रहने के बाद अब वन्दना जी पूर्णतः लेखन और सामाजिक कार्यों के प्रति समर्पित हैं।

वन्दना यादव से मेरी पहली मुलाकात नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, दिल्ली में हुई। उनके बड़े साहित्यिक कद के बावजूद जाने कब वन्दना जी के स्थान पर मुख से वन्दना दीदी निकल गया पता ही नहीं चला। मेरा सौभाग्य है कि अपनी मधुरिम मुस्कान और मधुर वाणी से सबको अपना बना लेने वाली आदरणीया वन्दना यादव ने बड़ी बहन के रूप में मुझे भी अपनी इस प्रेम गंगा में स्नान करने का सौभाग्य दिया। यह सत्य है कि वन्दना यादव जी से मेरी मुलाकातें अधिक ना हुई हों किन्तु चंद मुलाकातें ही जीवन में उनका विशिष्ट स्थान बना देने में सक्षम रहीं। यही कारण है कि एक दिन अचानक उनकी सोशल मीडिया पर जब एक पोस्ट देखी तो वहीं उनसे मिलने पहुँच गई, जहाँ वे कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहीं थीं। इसे मेरी जिद्द मान लीजिये

या एक महान व्यक्तित्व से मिलने की आतुरता, आप चाहें तो यह भी मान सकते हैं कि वन्दना यादव जी के ममत्व और वात्सल्य की चाहत मुझे स्वयं ही वहाँ खींच कर ले गई। अपनी व्यस्तता के बावजूद जिस प्रकार उन्होंने मुझे स्नेह और समय दिया उसकी आप आजकल के आत्म प्रशंसा में लीन बनावटी लोगों से तो अपेक्षा भी नहीं कर सकते हैं। यही कारण है कि आज की भाग दौड़ की जिन्दगी में जब अक्सर हम अपने परिवार जन से भी मिलने में आलस कर जाते हैं तब ऐसे में वन्दना दीदी से मिलना और उन्हें घर छोड़ने के बहाने उन पलों को सहेजना जिसमें उन्हें और अधिक जानने का अवसर मिले, साधारण बात नहीं है। एक अजीब सा आकर्षण है वन्दना जी की बातों में जो न जाने कब सभी को अपने मोहपाश में बाँध लेता है।

पुरवाई में प्रकाशित होने वाले अपने साप्ताहिक स्तम्भ 'मन के दस्तावेज़' में वन्दना यादव जी जब विभिन्न विषयों को उठाती है, तब कभी जीवन का फलसफा सिखाती हैं तो कभी हम सभी को चंदन बन जाने की सीख देती नज़र आती हैं। दरअसल यदि कहा जाए तो उनके 'मन के ये दस्तावेज़' सही मायने में उनके जीवन, उनके विचारों, उनके संस्कारों को समझने के लिए एक बड़ा अवसर है। बड़ी-बड़ी बातों को सहज रूप से कह जाना एक ऐसा गुण है जो लाखों करोड़ों साहित्यिक यात्रा में रत यात्रियों से वन्दना यादव को अलग करता है और यही सहजता उनसे मिलने वाले लोग भी अक्सर महसूस करते हैं।

वन्दना यादव, जो एक आर्मी अफसर की जीवन संगिनी भी हैं, उनके मन में अपने राष्ट्र के प्रति समर्पण और देशवासियों के प्रति लगाव सहज-स्वाभाविक ही है। एक बार वन्दना जी जब सैनिक पर लिखे एक गीत को सुनकर रो पड़ी थीं तब पूछने पर पता चला कि जिस पृष्ठभूमि पर वह गीत लिखा गया था वह मंज़र उन्होंने स्वयं अपने पति की तत्कालीन पोस्टिंग के दौरान अपनी आँखों से देखा था। उस मंज़र को याद कर वे जब आज भी भाव विभोर हो उठती हैं तो आप ही अंदाजा लागाइये ममत्व और वात्सल्य का, राष्ट्रभक्ति का कैसा अथाह सागर उनके मन में हिलोरें लेता होगा। यही वह गुण है जो उनके द्वारा लिखी प्रत्येक पंक्ति में दिखाई पड़ता है। यही कारण

है कि उनके द्वारा लिखी हर पंक्ति पाठक या श्रोता को अपनी सी लगती है और पाठक या श्रोता मंत्रमुग्ध हो उन्हें पढ़ता या सुनता ही चला जाता है। मेरी ये बातें शायद उन लोगों को अतिशयोक्ति लग सकती है जो आज तक कभी वन्दना जी से मिले ना हों। किन्तु जो लोग यदि कभी एक बार कुछ क्षण के लिए भी उनसे मिले हैं, वे मेरी इन बातों से यकीनन सहमत होंगे। वन्दना यादव दीदी पर आने वाले इस विशेषांक हेतु मैं उन्हें देरों शुभकामनाएं देती हूँ और यह कामना करती हूँ कि वे इसी प्रकार लिखती रहें और हम सभी का अपने अनुभवों और विचारों से सही दिशा में मार्गदर्शन भी करती रहें। —साहित्यकार, नई दिल्ली, Email : poojashekhar123123@gmail.com

अन्य की नज़र में वन्दना यादव – संस्मरण

एक दोस्त की चिट्ठी



गिरीश खेड़ा

साहित्य जगत के शिखर पर पहुंची वन्दना यादव आज सबके लिए सम्माननीय है पर मेरे लिए तो वही वन्दना है जिसकी टांग खिंचाई मैं सालों साल से करता आ रहा हूँ। वन्दना से मेरी मित्रता की यात्रा, सह-अध्यापिका होने से लेकर आज की सफल लेखिका बनने तक की है। जी हाँ, वर्षों पहले हम दोनों, एक स्कूल में एकसाथ पढ़ाया करते थे।

पुरानी शराब की तरह हमारी मित्रता आज तक शबाब पर है। फ़र्क आया है तो उम्र का, पर रिश्ते आज भी जवान है। हमारे जनरल यादव जी की तरह। मैं पुष्पेंद्र जी को हमेशा जनरल साहब ही बुलाता हूँ क्योंकि हर बार प्रमोशन के साथ उनका रैंक बदल जाता था। पर मैं उनका रैंक भूल जाता हूँ तो गलती से पुष्पेंद्र जी का रैंक छोटा ना बता दूँ, इसीलिए उनका रैंक जनरल बोल कर उनकी और अपनी इज्जत बचा लेता हूँ।

झल्लू सी बातें करने वाली मेरी दोस्त की शादी का दिन जब याद आता है, तो हंसी आज भी नहीं रुकती। मैं अपने अन्य अध्यापक साथियों के साथ जब शादी के पंडाल में पहुंचा तो हमारे जनरल साहब और महारानी वन्दना जी मंच पर, सोफे पर आसीन थीं। और मंच के नीचे बैठी ग्रामीण महिलाएं, दुल्हा-दुल्हन को घूँघट का आधा पल्लू उठाए, ताड़ रही थीं। और दुल्हा-दुल्हन दोनों, स्टेज पर वरमाला के बाद, ऐसे बैठे हुए थे जैसे किसी ने दोनों को पीट पीट कर बैठा रखा हो। (यह एक लंबी कहानी है जिसे संक्षेप में बता रहा हूँ कि वन्दना मूलतः गांव से है मगर इनका रहना, पढ़ना शहर में हुआ था। शादी, संस्कार आदि सब अपने मूल स्थान पर करते हैं इसीलिए इसकी शादी भी गांव से हो रही थी।) वन्दना, जिसकी स्कूल में बतीसी कभी बंद नहीं होती थी, उस दिन इसके होंठ ऐसे बंद

थे जैसे होंठों पर लाल सुर्ख लिपस्टिक नहीं बल्कि फेविकोल लगाया हो। और हमारे जनरल साहब तो ऐसे गंभीर से लग रहे थे जैसे कि वो शादी के लिए नहीं बल्कि किसी जंग के लिए आए हों। और अपुन ठहरे उदंड इंसान जा पहुंचे मंच पर और दोनों से हाथ मिलाते हुए कहा कि स्माइल तो दिखाओ, ये जंग का मैदान नहीं, शादी का मैदान है। पहले तो वन्दना हल्की सी मुस्कराई और जनरल साहब ने अपनी ओर से थोड़ा सा मुस्कराने की जबरदस्त एक्टिंग की, जो सच में फेल हो गई थी मेरे लिए। पर अपुन भी ढीठ इंसान है, फिर से दोनों को बोला कि अरे मुस्करा तो दो, ये तुम दोनों की ही शादी है। तब जाकर दोनों कि असली मुस्कराहट चेहरे पर नजर आई। और ईश्वर की कृपा है कि आजतक दोनों की वो मुस्कराहट बरकरार है। और उसी मुस्कान को आज वन्दना ने कामयाबी की एक नई उड़ान दे दी है। पर मैं ठहरा जल कुकुड़ा, जब जब वन्दना अपनी हर कामयाबी को सोशल मीडिया पर साझा करती है, तब उसकी टांग खींच कर अपनी जलन मिटा ही लेता हूँ। ये तो शुक्र है कि आंटी जी (वन्दना की माता जी) सोशल मीडिया की दुनिया से दूर है, वरना मेरे कान खींच ही देती और मुझे प्यार भरी झिड़की भी मिल जाती कि मैं जल कुकुड़ा बनना छोड़ दूँ। वैसे आंटी मुझे जानती है कि मैं घनचक्कर तो हूँ पर उनका प्यारा सा शरीफ-बदमाश बेटा भी हूँ।

हमारा दोस्ती का रिश्ता भी गजब है कि उसकी शादी के बाद से आजतक, बामुश्किल आठ या दस बार ही संपर्क में आए हैं, पर वन्दना की साहित्य जगत में हासिल कामयाबी ने और महारानी वन्दना जी के द्वारा सोशल मीडिया पर, जला डालने वाली कामयाबी की ढेर सारी झलकियों ने हम दोनों को आज तक एक दूजे के संपर्क में रखा है। इसके लिए मार्क जुकरबर्ग को धन्यवाद देता हूँ। कभी सोचा नहीं था कि कोई मेरा मित्र ऐसी बौद्धिक कामयाबी पाएगा। और वन्दना जैसी झल्लू से तो बिल्कुल भी उम्मीद नहीं थी कि हमको जला डालने वाली बौद्धिक और सामाजिक सफलता उच्च स्तर तक

पा लेगी। अगर मेरा लेख छपा तो मेरी बक-बक, पाठक वर्ग को भी हैरान परेशान ही कर देगी कि कैसे लल्लू का लेख प्रकाशित कर दिया। क्या करें जी ऐसे ही हैं हम। जनरल साहब भी वन्दना को कहते हैं कि गिरीश खेड़ा के घर जाने का ये फायदा है कि उनके घर में बस एक बार ही बोलना होता है, फिर बाक़ी बक-बक तो गिरीश खेड़ा एंड फैमिली ही करती रहेगी। बोलने की पूरी एनर्जी बचाते थे जनरल साहब। वैसे वन्दना के रहते घर पर जनरल साहब बोलने की एनर्जी खूब बचाते हैं। हाँ वन्दना के लिए मेरी सलीकेदार भावनाएं समझनी है तो मेरा आगे का लेख पढ़ने की हिम्मत जुटा लें शायद आपको आपके पसंद की बातचीत मिल जाए।

"वन्दना यादव" साहित्य के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा छटकाती हुई वह जादुई लेखिका है, जिसने साहित्य प्रेमियों के मानस को बड़ी कोमलता से छूआ है। यह उनकी लेखनी की सरलता व कोमलता का ही प्रभाव है जिसने, साहित्य जगत में उन्हें सम्माननीय स्थान दिलवाया है। ऐसा हो भी क्यों नहीं, जितनी सरल व कोमल स्वभाव की वह खुद है तो उनकी लेखनी में ये रंग तो नजर आने स्वाभाविक ही है। कहते हैं ना कि कवि और लेखक अपनी लेखनी में कहीं ना कहीं अपने व्यक्तित्व की छटा बिखेर ही जाते हैं। वन्दना ने अपने पहले ही उपन्यास "कितने मोर्चे" में कितनी सरल भाव से, खूबसूरती से और वास्तविकता से सैनिकों की अर्धांगनियों के जुझारू जीवन के उन पहलुओं का जीवंत चित्रण किया है जो हमेशा से अछूता ही रहा था। वन्दना यादव ने अपने अनुभवों को शब्दों से वीरांगनाओं के जीवन को जो कागज पर आकार दिया है, वह अद्भुत है। अपने आसपास घट रही घटनाओं को वन्दना कागज पर ऐसे उतारती है कि पाठक को लगता है कि उसकी आंखों के सामने, वह सभी घटनाएं जिंदा तस्वीर बनाकर उभरने लगती हैं। शब्दों को पिरो कर पाठकों की मानस पटल पर कथानक की तस्वीरों को जीवंत कर देना वन्दना की लेखन क्षमता के दर्शन करवाता है। यही वजह रही है कि आज दिल्ली विश्वविद्यालय की एम.फिल. हिंदी उपाधि के लिए "कितने मोर्चे" पर लघु शोध-प्रबंध किया गया। "नीला आसमान" और "सब्जियों वाले गमले" से बच्चों के संसार की सैर करवा कर वन्दना ने अपने पाठकों को अपने व्यक्तित्व में छुपे अल्हड़ पन की तस्वीर सांझा की है।

मेरी दोस्त वन्दना को निरंतर साहित्य रचने के लिए बहुत सारी शुभकामनाएं।

—शिक्षक, सोशल एक्टिविस्ट, नारनौल, kherakittu124@gmail.com

लघुकथा : वन्दना यादव

'मासूमियत!'

जनेऊधारी परिवार से था वह। पुरखों की बनाई परंपराएं निभाता रहा.. परिवार की सिखाई हर बात मानता रहा बावजूद इसके, उसके भीतर बैठे मासूम के जेहन में सवाल उठते थे!

परिवार वाले अक्सर कहते उल्टी बातें तेरे दिमाग में आती कहां से हैं? बड़ा होने लगा तो सुनने को मिला, सही-सही बोला करो...

उसने ऐसा करने की कोशिश भी की।

कुछ और बड़ा हुआ तब धर्म की खबर हुई। कई-कई धर्म, जातियाँ, मज़हब... उसकी मासूम समझ का दायरा मासूम ही रहा।

आस-पड़ोस के घरों में दो तरह के लोग थे, उनका आपसी सरोकार गहरा था। उसका वास्ता भी इन्हीं दोनों से ज्यादा पड़ा। उसे कुछ इधर अच्छा लगता तो कुछ उधर। कुछ कमियाँ यहाँ मिल जातीं, कुछ वहाँ।

दोस्त हो सकते थे दोनों जगह, भाईचारा भी था पर रिश्तेदारी... बिल्कुल नहीं!

दोनों जगह के बुजुर्ग सांझे थे। भाई थे, बहनें थीं, भाई-बहन भी थे मगर वह रिश्ता... ना, वह गुंजाइश नहीं थी।

उसे अक्सर लगता कि यहाँ की आबोहवा में उस ओर के लिए कुछ अजनबियत सी... उस ओर की फिजाओं में भी कहीं-कुछ खटकता...

यहाँ से वहाँ... वहाँ से यहाँ...

वहाँ या यहाँ... यहाँ या वहाँ...???

दोनों ने मिलकर इसके दिमाग का दही कर दिया।

परिवार ने फटकारा। कहा, तुम्हारा धर्म...?

उनके लिए तो वह था ही...!

यहाँ से वहाँ तक, इस चौखट से उस दहलीज़ तक अपनी तलाश में भटकता रहा...

चौराहे पर बैठा फकीर कहता है, 'मासूम मारे जाते हैं! मासूम होना गुनाह है!' —दिल्ली, ईमेल: yvandana184@gmail.com

कफर्यू



वन्दना यादव

'लड़कियां रूई के फौहे सी नाजूक होती हैं। उन्हें घर के कामकाज सिखाए जाते हैं जिससे वे घरों में रहें और जिस तरह खुद को सजाती हैं वैसे ही घर-परिवार को सजाया करें। यूँ बेवजह उछलना ठीक नहीं, चलो घर के अंदर।' उसे याद आता है कि बचपन में दौड़-भाग मचाते बच्चों की टोली के बीच से हाथ पकड़ कर घर की ओर खींच कर ले जाती हुई

दादी हर बार घुमा-फिरा कर ऐसा ही कुछ कहा करती थीं।

'मुझे भी भाईजान के साथ खेलना है।' जब-जब उसने मचल कर कहा, घर की औरतों से उसे झिड़कियां ही मिलीं।

'घर की औरतें... हाँ संयुक्त परिवार में सदस्यों की गिनती इसी तरह होती है। उसके घर में अम्मी की उम्र के आसपास की चार औरतें थीं। उस उम्र से ऊपर-नीचे भी बहुत सारी महिलाएं थीं ऐसे ही बाक़ी रिश्ते भी थे।

'वो मर्द है। बाहर की दुनिया में घूमना, अपनी पहचान बनाना, नाम, पैसा और शोहरत कमाना ही काम है उसका। वो दुनिया तुम्हारे लिए नहीं है मेरी बच्ची। तुम घर सम्भलना सीखो। खाना बनाना और रिश्तों को निभाना सीखो। यही सब सीखा हुआ आगे काम आएगा तुम्हारे।' वह मन मसोस कर रह जाती। बाहर खेलने का मन होता पर खिड़की में बैठ कर सबको खेलते देखने के सिवा कुछ कर ना पाती।

'नाजूक उम्र से यही बातें मेरे दिमाग में भरी जा रही थीं। घर की हर औरत अपनी-अपनी तरह से सलीक़ेदार बनाने की ट्रेनिंग देने में कोई कमी नहीं छोड़ना चाहती थी। उन्हें भी उनके बचपन में कड़ाही-कड़छे पकड़ा दिए गए होंगे। तिल्लेदार काढाई और पशमीने की कारीगरी सिखने में लगा दिया गया होगा... हुं।' वह अकेली बैठी-बैठी बड़बड़ा रही थी।

'स्कूल जाया करो। ख़ूब मन लगा कर पढ़ाई करना। ये हमारे ज़माने की बात नहीं है कि बस घर सजा कर, बन-संवर कर शौहर को रिझाने से काम चला लोगी। ज़माना बदल रहा है। सिर्फ़ बीवी बन

कर घरों में दुबके रहने से काम नहीं चलेगा। अच्छी तालीम हासिल करो वही बदलते वक़्त में काम आएगी।' ना जाने किस वक़्त अम्मी ने यह कहा था जो बीतते समय के साथ शब्द-शब्द सही साबित होता गया।

'हमें अपनी बच्ची को तालीम दिलवाने के लिए बाहिर भेजना चाहिए।' स्कूल की पढ़ाई पूरी होने के बाद अम्मी ने ही हिम्मत करके अब्बू से कहा था।

'बाहिर क्यों भेजना जब अपने वतन में एक से एक कॉलेज हैं।' पलट कर आए सवाल के लिए उन्होंने तैयारी कर रखी थी।

'यहाँ आधी से ज़्यादा बार तो कफर्यू ही लगा रहता है फिर पढ़ाई मुकम्मल कैसे होगी। हमें अपनी बच्ची को किसी सियासी पार्टी का शिकार नहीं होने देना है और साथ पढ़ने वालों की बातों में आ कर पत्थरबाज़ बनाने से भी रोकना होगा। बेवजह की बातों में पड़ कर ये अपनी जिंदगी बर्बाद ना कर ले। बस अपनी तालीम पूरी करे तब तक अशफ़ाक़ मियाँ भी लौट आएंगे फिर हम इनका निकाह पढ़वा देंगे।' अम्मी की बात उन्हें पसंद आ गई थी।

'मर्द ज़ात कितनी अजीब होती है... बीवी की किसी बात को उन्होंने कभी पसंद नहीं किया फिर सुनने या मानने का तो सवाल ही नहीं होता था पर औलाद की बात आई तो उसी औरत की बात सुन भी ली और मान भी ली!' वह अपने आप से कह रही थी।

'कहाँ भेजने की सोच रही हैं ज़ीनत को?'

'अब्बू ने मना करने की बजाय जब यह सवाल किया था, मैं तो खुश हो गई थी मगर अम्मी इसके बाद की बातों का रूख़ भांप गई थीं।'

'दिल्ली भेजना चाहिए।'

'दिल्ली ही क्यों? कोई ख़ास वजह!' अब्बू ने पलट कर पूछा था।

'उनकी बातें गंभीर होती जा रही थीं। वो उम्र ऐसी थी जिसमें कुछ नया करने या घर से दूर जा कर अकेले रहने पर डर और फ़िक्र के मुकाबले रोमांच अधिक था। उस दिन मेरे लिए वहाँ बैठ कर उनकी बातों का हिस्सा बनना मुश्किल से ज़्यादा बोरियत भरा था।' याद

करते हुए उसके होंठों पर तिरछी सी मुस्कान आ गई। वैसे सच तो यह था कि उस बोरियत से बचने के लिए जब अम्मी-अब्बू उसके भविष्य की राह निर्धारित करने जा रहे थे तब उनकी बातों से ध्यान हटा कर उसने खुद को नई जगह बिल्कुल अकेले, आज़ादी के साथ रहने की कल्पना से जोड़ लिया था। जहाँ शायद थोड़ा-बहुत डर था मगर बहुत सारी आज़ादी भी तो मिलने वाली थी। थोड़ी घबराहट और असुरक्षा की भावना थी तो आत्मनिर्भर बनने के अनगिनत मौक़े भी उसका इंतज़ार कर रहे थे। उसकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं था।

'आज ये वहाँ पढ़ाई करने जाएंगी, उस दुनिया को देख-समझ लेगी। कल अशफ़ाक के साथ किसी बड़े शहर ही तो बसना है इसे तो आज से ही तैयारी करना अच्छा रहेगा।' अब्बू भी शायद मन ही मन यही चाहते थे।

'देखते ही देखते दाखिले से ले कर रवानगी की सब तैयारियाँ पूरी हो गई थीं और फिर वो दिन आ गया जब मैंने अकेले, अपने दम पर नई दुनिया की ओर कदम बढ़ाए। अम्मी उदास तो थीं मगर रवानगी के वक़्त उन्होंने जो कहा था, मैं भूला नहीं सकी थी।' इस बार उसकी हँसी गायब हो गई।

'क्या कोई माँ अपनी बेटी के लिए ऐसी ख़ौफनाक दुआएँ कर सकती है जैसी अम्मी ने मेरे लिए की थीं?' कितने सालों तक वह यही सोचती रही।

'बचपन की सीख और झिड़कियों से भी मैंने चुन-चुनकर अपने लिए अम्मी की दी हुई सीख में से नफ़रतें ढूँढ़ ली थीं। उनकी कही कुछ बातों पर उनके पूरे वज़ूद को तौलने लगी थी...'

'मैं चाहती हूँ कि तुम अपनी पढ़ाई पूरी करो। जिस तरह घर में क़ैद रह कर मैंने अपनी ज़िंदगी बिता दी, तुम अपने साथ ऐसा मत होने देना। हर हाल में औरत को ही क़ीमत चुकानी होती है, यही होता आया है आज तक। इसीलिए समझ लो कि अपने हिस्से की क़ीमत तुम्हें भी चुकानी ही होगी। अच्छा यही होगा कि तुम अपनी तैयारी अभी से शुरू कर दो।' अम्मी उसे समझा रही थीं।

'कैसी तैयारी अम्मी?'

'मैंने मासूमियत से पूछा था। मासूम ही तो थी उस वक़्त। आखिर कॉलेज के पहले साल की बच्ची की उम्र ही कितनी होती है।'

'हमारी बच्ची को चलते-चलते क्या सिखा रही हैं बेगम?'

'अब्बू ने मेरे कानों में उड़ेली जा रही उन बेवजह की सीख से बचा लिया था। बेवजह की सीख... हाँ, कम से कम उस दिन तो यही लगा था। जब तक समय से आगे दूर तक देखने-समझने का नज़रिया

पैदा ना हो, समझाइश ऐसी ही लगती है। जो भी हो उस दिन मिली ताज़ा-ताज़ा सीख से उपज़ी नफ़रत के बाद अम्मी से बिछुड़ना बुरा नहीं लगा था।' कुछ देर के लिए उसने अपनी आंखें बंद कर लीं और होंठ भी कस कर भींच लिए। कुछ ही देर में वह फिर से वैसे ही हो गई जैसी साधारण तौर पर दिखा करती है। कायम वही रहता वही है जो स्थायी हो, ओढ़ा हुआ चरित्र या रिश्तों के बीच पनपी ग़लत फहमियाँ आखिरकार ख़त्म हो ही जाती हैं।

'क़ीमत औरतों को ही चुकानी होती है... मैं अभी से तैयारी शुरू कर दूँ।' अम्मी के ये शब्द मेरे वज़ूद पर हावी होने लगे थे। अगर वो जानती हैं कि क़ीमत चुकानी होगी तो उस रास्ते मुझे भेज ही क्यों रही हैं? यही सोचती रही थी कितने वर्षों तक।'

कहाँ तो वो ये सोच कर मीठे सपने बुन रही थी कि अशफ़ाक जब भारत लौटेगा, दिल्ली के हवाईअड्डे पर वह उसका स्वागत करने जाएगी मगर अम्मी ने जो कहा, वह चाह कर भी भूला नहीं सकी थी।

अशफ़ाक को ले कर उनकी बात फांस के जैसे चुभ गई थी कलेजे में। क्यूँ कहा उन्होंने ऐसा? ऐसी क्या बात देख ली थी उन्होंने अपने होने वाले दामाद में... और... और... अगर देख ली थी तो अपने तक क्यूँ रखी? अब्बू से कहतीं, रोक देतीं उस नामुराद निकाह को... आज वह हालात को दूर बैठ कर देख रही है तब यह कहना आसान लग रहा है मगर उस दिन... उस दिन तो क्या, उसके बाद बरसों तक उसके लिए अम्मी वो प्यार और मोहब्बत से भरे दामन का नाम नहीं रहीं। उसे नफ़रत हो गई थी अपनी ही माँ से।'

'ज़ीनत, कैसी है मेरी बच्ची?' अब्बू से बात करने के बाद जब वे फोन पर मीठी आवाज़ में बेहिसाब दुआएँ लुटातीं, उनकी मिश्री घुली आवाज़ उसे ज़हर बुझे तीर सी लगती। वह बिना जवाब दिए फोन काट दिया करती थी। ना जाने कितनी बार ऐसा हुआ वो तो अब्बू अपनी बात बीच में रोक कर ज़बरदस्ती अम्मी से बात करवाने लगे थे नहीं तो दुआ-सलाम भी छूट गया होता।'

अब जब-कभी इस बारे में सोचती हूँ तब समझना आसान लगता है कि कुसूर अकेले अम्मी का भी नहीं था। वो जितना कर सकती थीं, कर ही रही थीं। ज्यादा कुसूर उसकी उम्र और नासमझी का था।

निकाह की तारीख पक्की हो गई थी। दोनों ओर तैयारियाँ जोरों पर थीं। अशफ़ाक लौटने वाले थे। मैं सुहागरात के बारे में सोच कर ही अजब सी ख़ुमारी में डूब जाया करती थी। वो मोहब्बत भरे दिन थे... उसके चेहरे पर मुस्कुराहट फैल गई।

'कितनी चाहत थी दोनों ओर से। हर समय एक-दूसरे के साथ रहने का मन चाहता था दोनों को। अपना वतन अपना ही होता है... वादी का माहौल रास आने लगा था उन दिनों। अकेले अरब देश लौटने का मन नहीं था अशफ़ाक का... कुछ दिन ख़ुमारी में बीत गए थे पर उससे ज्यादा उसी हाल में बीताने की तस्वीर नहीं बन रही थी। पैसा कमाना ज़रूरी था...' सोचते-सोचते सिर भारी सा होने लगा। उसने अपने सिर के बोझ को कम करने के लिए सिर झटक दिया इस पर भी बोझ जस का तस बना रहा।

'पशमीना... हाँ मैं पशमीने का काम शुरू करूँगा। इसी काम में अपना नाम बड़ा बनाऊँगा।' अशफ़ाक जितना हो सके ज़ीनत के साथ रहना चाहता था। लगी-लगाई नौकरी छोड़ कर उसने नया काम करने का मन बना लिया।

'सोच लो, काम जमाने में वक़्त लगेगा। सारी जवानी निकल जाएगी नाम बनाने में।' उसकी बात सुनकर अशफ़ाक हँसा था।

'कम से कम पूरी जवानी साथ तो गुज़ारेंगे। पच्चीस साल तो हम पहिले ही अलग-अलग रहे अब काम के लिए अलग हो जाएँ तो फिर जीएंगे कब?'

'उफ़ मेरे मौला... इतनी मोहब्बत! उन्हीं लम्हों में जीना और उन्हीं में मर जाना चाहिए था... कभी मैं किसी के लिए कितनी ख़ास थी।' यह सोचते हुए उसके मुर्दाँना से चेहरे पर रौनक आ गई।

'ये उपरवाला भी ना, क्या-क्या रंग दिखाता है।' उसने गहरी सांस ली।

'अपने वतन की बात ही कुछ और होती है... वहाँ का तो पानी भी मीठा लगता है। यही कहवा वहाँ के पानी में घुल कर जन्मत जैसा स्वाद देता था और यहाँ! (उसके माथे पर बल पड़ गए) यहाँ तो बस हुड़क मिटाने के लिए पी लेती हूँ। वैसे उस स्वाद को ढूँढ़ने अब जाना भी कहाँ होता है! स्वाद तो सारे जैसे मिट ही गए हैं ज़िन्दगी से। अब तो डायटिंग ही बची हुई है या कुछ बचा है तो नॉस्टेलजिया!' उसने लैपटॉप बंद कर दिया।

'लो, अब हो गई छुट्टी। ना कालीन और पशमीना शॉल दिखाई देंगे, और ना ही वो सब याद आएगा!' उसने खुद को सबसे दूर करने के लिए यादों के तहखाने पर कुँडी लगा कर ताला जड़ दिया।

वह खिड़की से बाहर देखने लगी। बड़े से पेड़ की शाखाएँ दिख रही थीं। हवा से पत्ते हिल रहे थे शायद परिंदे भी चहचहा रहे हों मगर शीशे लगी खिड़की के पार से उनकी आवाज़ें पहुंच नहीं रही थीं। कुछ देर यूँ ही बेमक़सद पत्तों को हवा की ताल पर थिरकते हुए देखती रही। वह यादों के तहखाने पर लगाए ताले की चाबी निकालना भूल

गई थी, ना जाने कब फिर वह उसी दुनिया में दाखिल हो गई जिससे अक्सर छुटकारा पाने की कोशिशें किया करती है।

'सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था कि फिर हालात ने करवट ली। टूरिस्ट आ रहे थे, सारे हाउसबोट और होटल भरे हुए थे सैलानियों से। घूमने और खरीददारी में सैलानी ख़ूब पैसा खर्च कर रहे थे। वादी में सबका काम अच्छा चल रहा था कि ना जाने किसकी नज़र लग गई धरती की जन्मत को। हालात बदलने लगे। हर एक बंदे को शक की नज़र से देखा जाने लगा था और फिर चिनार की ख़ूबसूरती से रौशन रहने वाली और केसर की उमदा फसल देने के लिए मशहूर धरती अचानक ख़ूनी वादियों में तब्दील हो गई। कफ़्यू लगा दिया गया। घरों में बंद ज़िंदगी के बीच उस दिन ज़ीनत को दर्द उठा। अस्पताल जाने की इजाज़त मांगते भी तो किससे? दरवाज़े-खिड़की तक खोलने की मनाही थी। ज़रूरत के लिए बाहर निकलने वाले गोलियों के शिकार हो रहे थे।

अशफ़ाक के अब्बू जब सहन नहीं कर सके बहू का तड़पना, वो दरवाज़ा खोल कर मदद मांगने दौड़े थे। बाहर से फायर की आवाज़ आई थी बस उसके बाद सन्नाटा। अब्बू की लाश घर से थोड़ी सी दूरी पर पड़ी थी, लावारिसों की तरह। एक ओर घर के भीतर खानदान का नया चिराग पैदा होने को था दूसरी ओर घर से कुछ कदम की दूरी पर घर के मुखिया का ठंडा पड़ चुका जिस्म पड़ा था।

ठंड से बचने के लिए मोटे फिरन में हाथ छुपाए जब वे सुरक्षाबलों की ओर दौड़े, उन्हें आतंकवादी समझ लिया गया और एक बार रूकने को आगाह किया था, वे मदद ले आने की उम्मीद में बिना रूके उसी ओर दौड़ते रहे... बस गोलियां चलने की आवाज़ आई थी। माहिर हाथों से चले तो गोली एक ही बहुत होती है। बंदूक से निकली गोली किसी का ज़ात-धर्म नहीं पूछती और ना कोई भेदभाव करती है फिर चाहे वह किसी दहशतगर्द के लिए चले या किसी मासूम के लिए। गोली सही जगह लगी और पलक झपकते ही उसने अपना काम कर दिखाया।

बच्चा टेढ़ा हो कर फंस गया था। माँ और बच्चे की जान पर बन आई थी। घर की औरतों ने मिल कर किसी तरह डिलीवरी करवाई। उनकी पहली औलाद जिस हाल में दुनिया में आई, नई जन्मी बच्ची और ज़ीनत ने जो भुगता, अशफ़ाक का जन्मत में रहने का सपना काँच के महल सा चूर-चूर हो गया। किरचें इतनी महीन थीं कि उन्हें सहेजना, जोड़ना मुमकिन नहीं था।

'हम यहां नहीं रहेंगे।' अशफ़ाक ने एलान कर दिया।

'कहाँ जाएंगे हम?' वह हैरान थी।

'मैं तो पहले भी कहीं और ही जाने वाला था!'

'कहाँ? कहाँ जाने वाले थे?' उसने हैरानी से पूछा।

बार-बार पूछने पर भी अशफ़ाक ने जवाब नहीं दिया। उन दिनों उसके चेहरे पर अजब खून सा सवार रहता था।

'मैं तो कहीं और ही जाता मगर अब... (कुछ देर बेटी को देखते रहने के बाद उसने निर्णय बदल दिया।)

'वहीं जहाँ से अपना सामान विदेशों को भेजते हैं। यहाँ का काम वहाँ बैठे-बैठे सम्हाल लूँगा या आना-जाना कर लेंगे पर यहाँ से निकलेंगे तो बिजनेस फैलाने में आसानी होगी। दिल्ली वो शहर है कि अगर तबियत से काम करो तो मिट्टी भी सोना बन जाती है।' उसे अशफ़ाक की किसी बात से ऐतराज नहीं था। वह सही मायनों में जूआ खेलने की उम्र थी। दोनों नन्हीं सी बच्ची को कलेजे से लगाए ज़िंदगी को गठरियों में बाँध कर अपनी क्रिस्मत आजमाने उस शहर आ गए थे, जो सदियों से बेहिसाब लोगों को अपने तिलिस्म में बाँधता आया है।

दिल्ली का मिज़ाज ही ऐसा है कि जिसने एक बार यहाँ क़दम रखा, वो कभी लौट कर अपने घर नहीं गया। अगर कहीं गया तो तरक्की की उड़ान भर कर परदेस चला गया। प्रवासी से परदेसी होना उसे कुबूल हुआ मगर लौटना ग़वारा ना हुआ। दिल्ली के लिए बस एक ही रास्ता है। वो कहते हैं ना, वन-वे रूट। यहाँ यू-टर्न या घर वापसी जैसा कोई रास्ता नहीं है। वे उम्मीदों की टोकरी लिए उस धरती पर आ गए थे जहाँ के गर्मी-सर्दी जैसी ही तासीर यहाँ के इंसानों की है। या तो बहुत प्यार-मोहब्बत से मिलते हैं यहाँ के लोग, या जिस्म झुलसाने वाली गर्मी के जैसे। बीच का कोई रास्ता नहीं है। अपनी सोच को पुख्ता करने के लिए उसके पास बहुत सारे वाक़ए मौजूद थे।

'जो भी हो, महानगरों की क्रिस्मत में वफ़ा नहीं आती। हर आदमी यहाँ पैसे कमाने आता है और पूरे के पूरे महानगर को खरीदार की नज़र से तौलता है। लगातार इसी क्रिस्म की सोच का सामना करते-करते महानगर भी इसी रास्ते पर दूर तक आगे बढ़ता जाते हैं।' उसने गहरी सांस ली।

आज ना जाने क्या हो गया है उसे। यादों की गलियों से वह जितना बाहर निकलना चाहती है, उतने ही उसके कदम उन गलियों में ओर अंदर बढ़ते जा रहे हैं। वह यादों के दलदल में धंसती जा रही थी।

'काम ठीक-ठाक चल निकला था। अशफ़ाक ख़ूब मेहनत कर रहा था। पीछे घर में अब्बू से बातचीत हो जाया करती थी पर

उसने अम्मी से बोलचाल बंद कर दी थी। उसने अम्मी को माफ़ नहीं किया था। कर ही नहीं सकती थी। उनके कुसूर बढ़ते जा रहे थे। वह अपनी ज़मीन पर अपने लोगों के बीच रह रही थीं। उन्होंने अकेलापन नहीं जीया था। पराई धरती पर जा कर अजनबियों के बीच पहचान बनाने की जंग में हारने, थक कर चूर हो जाने को कहाँ जानती थीं वो। उपर से जब कभी यहाँ के माहौल से थक कर कुछ दिनों के लिए घर लौटना चाहा, अम्मी को हमारे वहाँ जाने से ना जाने क्या परेशानी थी। इस बार उन्होंने अशफ़ाक को समझा दिया था कि जहाँ आधी से ज़ियादा बार कर्फ्यू लगा रहता है वहाँ रह कर हम क्या कमाएंगे और कैसे अपनी बच्ची को पढ़ाएंगे। उनका मानना था कि हालात जल्दी ठीक होते नहीं लग रहे, हमें कोई इंतज़ाम करना चाहिए... और अशफ़ाक ने इंतज़ाम कर लिया।' इंतज़ाम के बारे में सोचते हुए उसके माथे पर बल पड़ गए।

'पहाड़ के लोगों के लिए मैदानी इलाकों की गरमी सहन करने लायक नहीं होती। शरीर का धूँआँ हो जाया करता था आज भी कमोबेश वही हाल है...' वह बड़बड़ाई।

'ये कारोबार शुरू ना किया होता तो मुश्किल हो जाती। यही रोटी दे रहा है और नाम भी। जितनी पहचान है, सब इसी से है।' वह अब अक्सर शुक्रगुज़ार रहती उस एक लम्हे के लिए जब उसने यहाँ आने की हामी भरी थी।

'कितना पसीना बहाया था दोनों ने कारोबार जमाने में! अब्बू की पहचान के लोगों ने थोड़ी-बहुत मदद की थी मगर बाक़ी का सफ़र उन्हें खुद पूरा करना था...' उसे संघर्ष वाले दिन याद आ गए।

'सुबह की भागदौड़ के बीच से दो निवाले खा कर घर से निकला अशफ़ाक दिनभर की दौड़-भाग के बाद शाम ढले थकान से चूर एकदम बेदम सा लौटता। जबकि दिन भर अकेली वह बिना किसी मदद के अपने दम पर घर और अपनी बच्ची सम्हालने के साथ कश्मीर से आए सामान को अलग-अलग करके सब पर क्रीमत के टैग लगाती। अलग-अलग जगह भेजने के हिसाब से सामान की गड़्डियां बनाती। पढ़ाई के दौरान वह जिस शहर में रही थी, वहाँ के लोगों की पसंद कुछ-कुछ समझती थी। यह अनुभव उसके काम आया। दिल्ली वालों के मिज़ाज का सामान अलग और बाहर भेजने का सामान अलग करते-करते थक कर टूट जाया करती थी। उन दिनों की शामें थकान से बेदम और सुबहें, लिस्ट के हिसाब से सामान का सैंपल दिखाने, माल भेजने की जद्दोज़हद में बीत रही थीं।' उसने आंखें खोली, आसपास नज़र दौड़ाई वह अपने घर में ही थी। खुद से कहना चाहती थी कि 'वो दिन बीत गए हैं पगली अब तो तुम्हारा नाम है, अपनी पहचान है!' मगर ऐसा कह नहीं सकी।

'वो अलग तरह की मशक्कत वाले दिन थे और आज के संघर्ष... उफ़!' उसने अपनी आंखें बंद कर लीं। वह जानती है कि उन दिनों उस वक्त के हालात उसे कठिन लगते थे और आज उसे अपना वर्तमान जीवन जटिल लग रहा है। उसे मालूम है कि बीते दिनों जो कठिनाईयां उन्हें आगे बढ़ने से रोक रही थीं, आज बहुत पीछे छूट गई हैं वही हाल आज की पेचीदगियों का होने वाला है। हालात एक जैसे कभी नहीं रहते। बदलते वक्त के साथ हालात भी बदल जाएंगे मगर तब तक...

'रटा-रटाया सामान लेने में लोग मोलभाव बहुत करते हैं। कंपीटिशन इतना है कि क्रीम निकासन मुश्किल होता जा रहा है।' अशफ़ाक हर बार इसी तरह की शिकायत करता।

'कुछ नया बनवाना चाहिए।'

'पशमीना तो पशमीना है इसमें नया क्या बनाओगी?' उसकी बात सुनकर अशफ़ाक ने जो सवाल किया उस वक्त तक वह जायज भी था।

'मसलन मैं डिजाइनर शॉल बनवा कर देखूँ, शायद बात बन जाए।' सूखी नदी में जैसे कहीं से बरसात का पानी आ गया था। ऐसा लग रहा था, जैसे पहाड़ों में बेहिसाब पानी बरसा है जो मैदानी नदी को पानी से लबालब किए जा रहा है।

'पहले-पहल उसने पशमीना स्टॉल पर महंगी पारदर्शी लेस लगवाने से शुरूआत की थी। दिल्ली के अमीर तबक़े में अलग-अलग तरह की लेस से सजे स्टॉल हाथों-हाथ बिक गए। उसका हौसला बढ़ा इससे आगे बढ़ कर उसने शॉल पर भी ऐसा ही कुछ शुरू किया था। एक्सपोर्ट करने की नौबत ही नहीं आई जितना माल तैयार करवाती, सब अगले ही एंजीबिशन में खत्म। अब उसे कुछ नया करना था और उसने किया भी। दोनों ने मिलकर जो सपने देखे थे, अब साकार होते हुए लग रहे थे। उसने उम्दा क्रिस्म की मखमल पर पंजाब से तिल्ले के काम के बार्डर बनवाए और उन्हें पशमीना शॉल पर लगवाया। दो खूबसूरत चीज़ें एक-दूसरे के साथ मिलकर जैसे मुंह से बोल पड़ी थीं। बेजान कपड़े बातें करने लगे। उसने मार्केटिंग पर भी ख़ास ध्यान दिया था। पंजाब की कशीदाकारी को कश्मीर के कारीगरों की मेहनत से मिला कर नया नाम दे दिया था। उसने धागों और मखमल को अलग-अलग राज्यों से मंगवाने का बारीक विवरण भी हर शॉल पर क्रीम के टैग पर लिखवा दिया था। एंजीबिशन में भी वह अपने ग्राहकों को शॉल से जुड़ी महीन से महीन जानकारी देती। इस तरह भारत के बड़े हिस्से के कारीगरों को आपस में जोड़ देने से उनका एक-एक शॉल, देस और परदेस में मुहँ माँगी क्रीम पर बिकने लगा था। साऊथ दिल्ली के अमीरों में उठना-बैठना हो

गया था। सब कुछ कमाल का चल रहा था।' उसके चेहरे पर एक खूबसूरत सी मुस्कुराहट आ कर बैठ गई। इस पल में उसके चेहरे से संघर्ष के निशान गायब हो गए थे।

'अम्मी और अब्बू जी-भर कर दुआएँ देते थे। बच्चों की कामयाबी से उन्हें खुशी जो मिल रही थी। इसके साथ हमवतन लोगों को अपनी धरती पर रहकर आतंकवाद से दूर रखने में बेटी-दामाद जो काम कर रहे थे, उससे दोनों का कलेजा खुशी से लबालब भर गया था।

'मेरी बच्ची, तुमने अपने लोगों को रोजगार दिया है। तुम्हारी वजह से बीसियों घरों में चूल्हा जलता है। कितनी दुआएँ रोज़ तुम्हें मिलती हैं।' अब्बू अक्सर कहते। अम्मी से बातचीत इस तरह हो जाया करती थी कि उन्होंने, उसके भेजे डिजाइन देख कर अलग-अलग रंग की मखमल और लेस लगवाने का सारा जिम्मा अपने उपर ले लिया था। माँ-बेटी के बीच एक पुल तो बन गया था मगर उस पुल के नीचे की गहरी खाई अब भी मौजूद थी।' उसके मुंह का स्वाद कसैला सा हो गया।

'मेरी बच्ची, जो मैंने किया वो सोच-समझकर किया था।' जब-जब वह इस तरह की बात शुरू करतीं, ज़ीनत फोन काट देती। मन तो उसका आज भी अपनी धरती पर लौटने को करता था मगर हर बार अम्मी की एक और 'ना' उसका मन तोड़ देती।

'इस बार की गर्मियों में हम कुछ दिनों के लिए अपने घर जाएंगे।' हर बार की तरह इस बार भी उसने अशफ़ाक से घर की याद में तड़पते हुए कहा।

'मैं तो आज चल पड़ूँ पर तुम्हारी अम्मी हमें वहाँ देखना ही नहीं चाहतीं।' अशफ़ाक ने चिढ़ कर कहा था। वह भी यहाँ की जिस्म जलाती गर्मियों से दूर, कुछ दिन छुट्टियाँ बिताने के लिए वादी में जाना चाहता था। मगर परेशानी यह थी कि अब उसका वहाँ कोई नहीं था। जाना था तो ज़ीनत के परिवार की रजामंदी ज़रूरी थी। यही बात उसे अक्सर गुस्सा दिलवा देती थी।

कई बार ऐसा भी हुआ कि अकेले अशफ़ाक ने बिजनेस के सिलसिले में जाने का फैसला किया, मगर अम्मी के सामने उसे हथियार टेकने पड़े। असल में यहीं से उसके मन में अम्मी के लिए चिड़चिड़ाहट शुरू हुई थी।

'एक-दो बार ऐसा भी हुआ था कि दोनों ने साथ जाने का कार्यक्रम बनाया और ऐन रवानगी वाले दिन समाचारों ने वादी में कर्फ्यू की खबर दी। दो-चार बार तो अम्मी ने 'हालात बेकाबू हैं', कह कर उनका जाना रूकवा दिया था।'

'दस साल हो गए हैं ना हमें आए, ना आपका मिलने को मन हुआ। आपका हमसे मिलने का मन नहीं होता तो ना सही, पर हम आ रहे हैं।' उसने पहले ही कह दिया था।

'इस बार जो मर्जी हो जाए कोई ताकत मुझे रोक नहीं सकती, मैं आ रहा हूँ।' अशफ़ाक को किसी से बात करता सुन ज़ीनत को अच्छा लगा था। कहने को परिवार में अपना तो कोई नहीं था उसका, पर दूर-पास के कई लोग थे।

'ज़ीनत आप खुद जा रही हैं तो कुछ बहुत ख़ास ही बनवाया होगा जिसे देख-परख कर लाएंगी।' हर बार की तरह इस बार भी उसके नए डिजाइन का इंतज़ार हो रहा था। वह भी तो कुछ ख़ास ही करने वाली थी। हवाई जहाज़ से बाहर निकलते हुए ही उसे अपनी मिट्टी की खुशबू हवाओं में लिपटी हुई मिली। उसका रोम-रोम थिरकने लगा था। अपनी मिट्टी, अपने लोग... अम्मी ने इतने बरसों बाद बेटी के घर आने की तैयारी कुछ ख़ास डिजाइन के साथ कर रखी थी। 'कहवा का कप उसने टेबल पर रखी ट्रे में रख दिया। दिमाग में बहुत कुछ चल रहा था मगर जिस तेज़ रफ़्तार घूमते पहिए में वह चकराधिन्नी सी घूम रही है, तीन वर्षों से उस पहेली से बाहर नहीं आ सकी। यही कारण है कि हर बार यहाँ तक पहुंच कर वह, और उसकी सोच बेबस हो जाती है।

वह वापस लौट आई थी उस ज़मीन पर जिसने उसे रोटी के साथ नाम और शोहरत भी दी थी। और इस बार साथ में लाई थी अपना नया स्टॉक। कश्मीरी कढ़ाई वाली सुंदर साड़ियाँ जिन पर उसने अलग से भी काम करवाया था। ख़ूबसूरत रंग और कढ़ाई वाली साड़ियों ने एक बार फिर लोगों को उसका मुरीद बना दिया। सब अच्छा चल रहा था। इस परदेसी शहर में हाड़ तोड़ मेहनत और ईमानदारी के काम ने उन्हें अपनी पहचान दी और इस बार से घर वापसी के रास्ते भी खुल गए थे। बेटी स्कूल जाने लगी थी इसीलिए उसका आना-जाना कम ही होता था मगर अशफ़ाक के चक्कर लगने लगे थे। उसकी पहचान का दायरा वहां भी फल-फूल रहा था। नए-नए नंबरों से उसे फोन आने लगे थे। नंबर सभी तरह के थे जिनमें देसी भी थे और परदेसी भी। कभी-कभी उसकी बात ख़ूब लंबी चलती और कभी शुरू होते ही ख़त्म हो जाया करती थी।

उसने अपना सिर, कुर्सी के सिरहाने पर टिका दिया जैसे सारी परेशानियां उस बेजान लकड़ी पर उड़ेल देना चाहती थी। कुछ देर यूँ ही पड़ी रहने के बाद साइलेंट मोड पर पड़े मोबाइल फोन को उठा कर देखा, अम्मी की मिस्ड कॉल थी। कश्मीरी कारीगर की और एक पंजाब वाले कारीगर का फोन भी आया हुआ था। एक्सपोर्ट का काम

सम्हालने वाले बंदे के कई फोन थे। इतने सारे फोन के जवाब में उसने सिर्फ़ एक फोन किया, 'आदाब अम्मी!'

अम्मी ने अशफ़ाक की दिल्ली से ख़ानगी से पहले कहा था, 'कर्फ्यू जैसे हालात हो रहे हैं। इस वक़्त उसे कश्मीर जाने का फैसला टाल देना चाहिए।' अशफ़ाक ने अम्मी का फोन रखते ही अपने किसी पहचान वाले नंबर पर फोन किया। बात ख़त्म करके उसने ज़ीनत को गले लगा कर और बेटी के माथे को चूम कर विदा लेते हुए कहा था, 'सब ठीक है। तुम्हारी अम्मी को या तो बेवजह फ़िक्रमंद रहने की आदत हो गई है या वो, मुझे वहाँ देखना नहीं चाहती।' उसकी आवाज़ में खीझ थी।

'जी अम्मी।' ख़ामोशी को तोड़ने के लिए ज़ीनत ने दोबारा कहा।

'मुझे माफ़ कर देना मेरी बच्ची... आज तीन साल बाद ख़बर आई है...' इतना कह कर अम्मी ख़ामोश हो गई।

'अब क्या ख़बर है अम्मी?'

'कुछ लोग ज़िन्दगी भर अपने उसूल नहीं बना पाते। उन्हें अच्छे-बुरे का फ़र्क़ समझ नहीं आता। सुख और चैन की ज़िन्दगी उन्हें रास नहीं आती।'

'आप कहना क्या चाह रही हैं?'

'मुझे हमेशा उसकी सोहबत पर शक़ रहता था। जब तुम्हारे निकाह का फैसला किया गया, मैंने समझाने की कोशिश की थी मगर जोइंट फेमिली में घर की बहू की कौन सुनता? वैसे भी तुम्हारे अब्बू के सामने कुछ बोलने की हिम्मत ही नहीं होती... किसी तरह तुम्हें दिल्ली पढ़ाई के लिए भिजवा सकी थी। यहाँ उसकी दोस्ती जिस तरह के लोगों से थी, उनसे दूर करने के लिए उसे अरब भेजा गया था। सुना था कि वहाँ भी उसकी सोहबत ठीक नहीं थी। मगर जब निकाह के बाद तुम दिल्ली चले गए, कुछ सुकून मिला था। लगता था कि अपने यारों को भूल जाएगा। जब-जब उसने यहाँ आना चाहा, मैंने बताया कि कर्फ्यू लगा है। कभी सच तो कभी झूठ बोला... उस दिन झूठ ही तो बोला था।' अम्मी इतना कह कर ख़ामोश हो गई।

'अब नई बात क्या हुई है इसमें?'

'आज तक हम यही अंदाज़ लगा रहे थे कि वो मासूम ज़रूर किसी फौजी इनकाउंटर का शिकार हो गया होगा...'

'अम्मी, पहेलियाँ बुझाना बंद करें और ये बताएं कि हुआ क्या है?' पिछले तीन सालों से ज़ीनत भी इंतज़ार कर-करके थक चुकी थी।

'उसने मेरी बात नहीं मानी... पहली बार मुझसे बदज़ुबानी की... उसने नज़रों का, सलीक़े का और अदब का कर्फ्यू तोड़ा... ख़बर

पक्की है कि वो गुमशुदा नहीं हुआ था और... ना ही उसका कोई इनकाउंटर हुआ बल्कि वो खुद ही सरहद पार... । 'दोनों ओर खामोशी छा गई। मौत जैसी खतरनाक और कर्फ्यूमई खामोशी... इस बार सच्चाई के रोड़ी-बजरी से माँ-बेटी के बीच की खाई भर गई।

'जीनत तुम अकेली वहाँ क्यों रहोगी अब? लौट आ मेरी बच्ची... अपनी मिट्टी में आजा।' आँसुओं की भाप के बीच आखिर माँ ने बेटी को उसकी मुरादों की ज़मीन पर वापस आने की इजाज़त दे ही दी।

'नहीं अम्मी, अब वापसी मुमकिन नहीं।'।

'सोच लो जीनत। हो सकता है कि कल वो तुम को मोहरा बनाने की कोशिश करे। दहशतगर्दों की पहली पसंद दिल्ली ही होती है।' माँ ने बेटी को आगाह किया।

'हूँ...' वह अपने और अपनी बच्ची के भविष्य के बारे में सोच रही थी।

'और फिर उसके बाहर जाने की खबर हमसे पहले सरकार को लग गई होगी। तुम पर भी नज़र रखी जाएगी। उस परदेस में अकेली कैसे रहोगी तुम?' माँ का कलेजा बुराई की तस्वीर बना-बनाकर डर रहा था।

'अम्मी, अब यही मेरा वतन है और जिनसे तुम डरने की बात कह रही हो, उनसे डरने की ज़रूरत मुझे नहीं है। असल में जब हमें ये खबर मिली है, तब तक मैं पहले ही सुरक्षा एजेंसियों की नज़रों में आ चुकी हूँ। ये लोग मेरी हिफाज़त करेंगे। डरना तो उसे है जो अब मुझसे जुड़ने की कोशिश करेगा।' जीनत ने फोन रख दिया। कुछ देर चुपचाप कुर्सी पर बेमक़सद सी बैठी रहने के बाद उसने मोबाईल उठा कर फिर से वही नंबर डायल किया।

'अम्मी, इतने सालों तक आप मुझसे माफ़ी माँगती रहीं, असल में माफ़ी तो मुझे मांगनी चाहिए। आपको समझने में जो ग़लती मैंने की, उसके लिए और तमाम बे-अदबी के लिए आप मुझे माफ़ कर दीजिए। इतने लंबे समय तक आपको ना समझने के लिए मैं माफ़ी चाहती हूँ।' दूसरी ओर से जो कहा गया होगा उसे सुनकर जीनत के माथे पर उभर आई लकीरों की गहराई कुछ कम सी लगी। उसने फोन रख दिया। इस बार दोनों ओर से कर्फ्यू हट गया था। -दिल्ली, ईमेल: yvandana184@gmail.com

“सुगली” कहानी पर प्रतिक्रिया

वन्दना यादव जी सुपरिचित लेखिका हैं। इनकी कहानी सुगली और सूगली के बीच का अंतर बताती है। कहते हैं स्त्री ही स्त्री की दुश्मन होती है। लेकिन यह कहानी हमें यह सोचने पर विवश करती है कि एक सच्ची स्त्री ही स्त्री की सबसे अच्छी साथी हो सकती है। दूसरी तरफ यह कहानी यह बताने की कोशिश करती है कि किसी के किए बुरे कर्मों की सज़ा उनके परिवार के लोगों को क्यों मिले? जबकि उस व्यक्ति के बुरे होने में उसके परिवार का कोई हाथ न हो। यह बात सच है कि इंसान का निर्माण सिर्फ परिवार से तो होता नहीं, उसके लिए समाज और आसपास का परिवेश भी उतना ही ज़िम्मेदार है। यह कहानी छोटी होते हुए भी बहुत कुछ कह जाती है। अपने भाव और कथ्य के कारण सुगली अपने आप में महत्वपूर्ण कहानी हो जाती है। इस कहानी में भाव हैं, शैली दिलचस्प है और कहानी अपना अर्थ लिए हुए है। इस शानदार कहानी के लिए वन्दना जी बधाई की पात्र हैं।

भगवंत अनमोल (साहित्य अकादमी युवा सम्मान से सम्मानित साहित्यकार)

वन्दना यादव जी द्वारा रचित ‘सुगली’ कहानी स्वयं में कई भाव व कहानियाँ समेटे है। इस कहानी में जहाँ एक तरफ एक माँ की, पिता की अनुपस्थिति में, पुत्र को ग़लत प्रवृत्तियों की ओर अग्रसर देखकर भी कुछ ना कर पाने की व्यथा है वहीं दूसरी ओर किस प्रकार स्त्री, पुरुष की निर्दयता का भार वहन करती है इसका वर्णन है। कहानी पठनीय है व संदेश लिए हुए है। सुगली को अपने बेटे से अत्यधिक स्नेह है परंतु ज्यों ही उसको मालूम पड़ता है कि उसका बेटा बलात्कार के इल्जाम में पकड़ा गया है वो तुरंत ही उसका श्राद्ध कर देती है। यह दर्शाता है कि लेखिका ने किस प्रकार मानव मूल्यों को प्राथमिकता दी है। नीरजा का पात्र भी अत्यंत सुदृढ़ है खास तौर पर सारे समाज को धता बताते हुए हृदय की आवाज़ पर लिया गया अंतिम फैसला। कहानी दिखाती है कि किस प्रकार मनुष्य का प्रेम प्रत्येक स्थिति में विजयी होता है। वर्तमान समाज विशेषकर महिलाओं के प्रति समाज के नज़रिए की झलक प्रस्तुत करती रोचक कथा।

- अंकुर मिश्रा (उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से सम्मानित।)

सुगली



वन्दना यादव

“जो काम आसान लगता है, वही सबसे कठिन होता है...”

इस बात ने दोनों बच्चों को सोच में डाल दिया। आमतौर पर वे बातों को समझ पाते हैं। शहरी माहौल में जिस तरह की बातें की जाती हैं, वे उनकी समझ में आ जाती हैं। मगर जब से दादी माँ आई है, उनके जीवन में सब कुछ गड़मड़ हो गया है। दादी के मामले

में उन्हें शब्द तो समझ आ जाते हैं, मगर बातों की गहराई नापना, उनके लिए टेढ़ी खीर साबित हो रहा है। आज भी कुछ ऐसा ही हुआ। बात शुरू हुई थी सुगली के बारे में... मगर न जाने बढ़ती हुई कहाँ से कहाँ तक पहुंच गई।

नीरजा अपनी शादी के बाद पति के साथ दिल्ली आ कर रहने लगी थी। दोनों बच्चों के जन्म यहीं हुए। वह अपने पति से राजस्थानी में बात करती है। बच्चे आज के दौर की प्रचलित भाषा, यानी अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी बोलते हैं। दोनों को राजस्थानी समझ आ जाती है लेकिन बोलना, उनके बूते के बाहर की बात है। यह बात परिवार के साथ-साथ सुगली भी समझती है।

सुगली ने वर्षों की मेहनत से घर को नीरजा भाभी के अनुसार चलाना सीख लिया है। कभी-कभार उसके काम से खुश होकर नीरजा भाभी उसे, 'तू तो मेरी परछाई है।' कह कर शाबाशी दे दिया करती है। बच्चों को ठीक से याद भी नहीं है कि सुगली उनके जीवन का हिस्सा कब से है। दोनों जब बड़े हो रहे थे, तब से उसको अपने घर में देखते आए हैं। हर दिन के घरेलू काम हों या पर्व-त्यौहार के अवसर हों, सुगली पूरे मन से इस परिवार के लिए काम करती है।

उस दिन सर्दियों की दोपहर में पूरा परिवार धूप सेंक रहा था। उसी समय गली से सब्जी वाले की आवाज आई। नीरजा ने सब्जियों के साथ ताजा-ताजा मूली भी खरीद ली। धो-छीलकर सुगली ने मूली के बीच में लंबाई में चीरा लगाया और चाट मसाला छिड़क कर, उपर से नींबू निचोड़ दिया। घर के बड़े से लेकर छोटे तक ने दो

या दो से अधिक मूलियों का स्वाद तो ज़रूर लिया ही था। इस सबमें बालकनी के जिस हिस्से में बैठ कर सुगली परिवार को स्वाद परोस रही थी, वहाँ गंदगी फैल गई।

"सुगली दीदी कितनी सूगली है।" बेटे ने ताली बजाते हुए कहा। इस बात पर छोटी बहन भी खिलखिला कर हँस दी। परिवार में यह हंसी-मजाक देर तक चलता रहा।

राजस्थानी परिवार के लिए किसी महिला का सूगली नाम होना, हैरान करने वाली बात थी। परिवार के लिए सुगली का नाम जब-तब मजाक का विषय बन जाया करता था। जब सब लोग फुर्सत में होते, बच्चे अक्सर इस बात पर हंसी-मजाक शुरू कर दिया करते थे। नीरजा भाभी ने भी ना जाने कितनी बार उससे इस नाम के पीछे की कहानी पूछी थी। सुगली की मासूमियत देखकर नीरजा उसको यह नाम रखने का कारण पता करने के लिए कहा कहती थी।

सीमित संसाधनों वाली सुगली, अपने घर में रोटी जुटाने के लिए सारस्वत परिवार पर आश्रित थी। गिनती की छुट्टियों वाली नौकरी में अपने नाम का इतिहास जानने की जद्दोजहद करना, उसके लिए संभव नहीं था। गांव जा कर माँ से क्या पूछती, 'उसका नाम गंदगी को संबोधित करते शब्द पर क्यों रखा है?' जब-जब नीरजा भाभी के परिवार में इस बारे में बात हुई, उसने इस विषय में सोचा ज़रूर। मगर लंबे समय तक यह विचार उसके ज़हन में रूका नहीं। इस सबके पीछे बहुत से कारण थे।

"माँ को कहाँ पता होगा! खुद मेरा बेटा हुआ था, तब मैं भी तो अपनी मर्जी से अपने बेटे नाम नहीं रख पाई थी। आज से बीस साल पहले मेरी इच्छा भी तो नहीं मानी गई थी। (आपने हालात के बारे में याद करते हुए एक फीकी सी हँसी उसके होंठों पर आ कर बैठ गई।) तब क्या अड़तीस-चालीस बरस पहले उसकी माँ की मर्जी चल सकती थी!" यहाँ तक के सोच-विचार के बाद वह अक्सर हँस देती है। इस हँसी में दुख नहीं होता। ना ही कमतरी का अहसास होता है। हाँ कुछ मजबूरी-सी ज़रूर झलकती है और कभी-कभी यह हँसी, बच्चों को बेवजह-सी लगती है।

'अब कौनसी हमारी जनम पत्री बननी है जिसके लिए नाम, और नाम का अर्थ ढूँढ़ेंगे।' कहकर वह बात को टाल देती है।

सारस्वत परिवार के सदस्यों की नींद ठीक से खुली भी नहीं होती, जब घर में वह कदम रखती है। दिन की पहली डोर बेल की आवाज़ सुनते ही सब समझ जाते हैं कि बाहर कौन है। दरवाज़े की घंटी से उसके आने की खबर, घर के सभी सदस्यों तक पहुँच जाती है। उसके आते ही घरभर की ज़िम्मेदारी से दबी जा रही नीरजा को रसोई की भागदौड़ से थोड़ी राहत मिल जाती है। वह बच्चों को तैयार करने, टिफिन पैक करने में लग जाती है।

'भाभी, हमारा छोरा घर के बाहर ज्यादा रहने लगा है।' जब-तब वह अपनी परेशानी नीरजा से कहती। अधिकतर समय वह अपने बेटे को प्यार करने वाली माँ ही होती मगर कभी-कभार ऐसा नहीं होता था। यहाँ बच्चों को चहकता देखती, तब उसके मन के घाव हरे हो जाया करते थे।

'भाभी, जाने हमार छोरा किस मिट्टी का बना है। उसे हमारे साथ बैठना तनिक भी नहीं सुहाता।' एक दिन उसने दुखी मन से कहा। इतना कहकर वह कुछ देर चुपचाप बैठी रही फिर अचानक रोने लगी। ऐसे मौकों पर नीरजा चुप रहकर उसकी बातें सुनती है। वर्षों के संग-साथ से वह सुगली को इतना तो समझ ही गई है कि अपने बेटे की जितनी बुराई वह करना चाहती है, जी भरकर कर लेती है मगर किसी ओर का कहा एक शब्द भी उससे बर्दाश्त नहीं होता।

'तुम उसे कुछ कहती क्यों नहीं?' एकबार नीरजा ने कहा था।

'मेरे सामने तो वो एकदम शांत रहता है। कोई बदमाशी नहीं, गाली-गलौज नहीं, किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं। किस बात पर टोकू उसको? मेरे से बात करते हुए तो उसकी जीभ तालू से चिपक जाती है। दुनिया बुराई करती है मेरे छोरे की। वो कलेक्टर तो बन नहीं गया जो उससे चिढ़ते लोग झूठ बोलते होंगे। कुछ तो सच भी होगा ना भाभी।' उसने रूंधे गले से कहा।

'हम तो उसकी पढ़ाई का खर्चा उठा सकते थे, जो उठा रहे हैं। रूपए-पैसे की मदद कर सकते हैं। बाक़ी तो तुझे ही देखना है। अगर वो तेरा कहना नहीं मानता है तो अपने साथ लेकर आ उसे, हम समझाते हैं।'।

सुगली अपने बेटे के साथ हाज़िर थी। नीरजा और उसके पति ने सुगली के बेटे को जितना समझा सकते थे, समझाया। किशोर उम्र कब किसी की सुनती है। मगर माँ के लिहाज में बेटा चुप रहा। अगली बार जब फिर से माँ का मन दुखा, और वह रोई, तब नीरजा ने उसे बेटे को बुला लाने को कहा। इस बार नीरजा ने सुगली के बेटे को

खूब लानतें भेजीं। उसे अपनी माँ की ज़िम्मेदारी उठाने को, उसका ध्यान रखने को कहा। नीरजा की कही अंतिम बात बेटे के मन में फांस सी चुभ गई।

'हम तुम्हारे घर तो चोरी नहीं कर रहे हैं। मेरे बाप को बीच में लाने का क्या मतलब है?' लड़का दहाड़ा। देर से चुपचाप बैठे लड़के में बाप के नाम पर अचानक जैसे विस्फोट हो गया था। माँ अपने बेटे को समझाती रही। नीरजा भाभी द्वारा "पति के ऑफिस में नौकरी देने वाले ऑफर" का लालच भी दिया मगर किशोर उम्र पार करने की ओर बढ़ रहा बेटा, किसी की बात सुनने को तैयार नहीं था। लड़का चला गया और उसी दिन से सुगली का व्यवहार भी बदल गया।

'माँ के कलेजे का टुकड़ा है। जितना कहना-सुनना है, वह खुद करेगी पर किसी और का कहा एक शब्द उसे बर्दाश्त नहीं।' नीरजा अक्सर कहती।

'नहीं भाभी। वो मेरा कलेजा है पर आपसे बत्तमीजी करना भी मुझे बर्दाश्त नहीं होगा। अब उसको यहाँ कभी नहीं लाऊंगी।' उसने दुखी मन से कहा।

'भाभी सारा दिन तो हम यहाँ काम करते हैं। शाम को घर पहुँचने पर उसकी कलह झेलनी पड़ती है। कभी किसी की छोरी से छेड़खानी करने की शिकायत मिलती है तो कभी कुछ और। पहले तो वो मोहल्ले के छोरों का लीडर ही बना हुआ था पर अब अलग से रंगदंग है।' वह बता रही थी। सुगली जब अपना दुखड़ा सुनाती है, नीरजा खुदको मानसिक रूप से कहीं और व्यस्त कर लेती है। ना वह सुगली का दुख जानेगी, ना परेशानी होगी।

'भाभी, दो दिन से छोरा घर नहीं आया। मन नहीं लग रहा।' दोपहर का खाना खाते हुए सुगली ने कहा।

'उसके दोस्तों से पूछ, वही बताएंगे।' नीरजा के पास सुगली की परेशानी का यही ईलाज होता है।

शाम होते-होते सुगली के फोन पर अलग-अलग नंबरों से फोन आने लगे। एक अनजान नंबर से आया फोन उसने उठा ही लिया। "पुलिस" के नाम ने ही उसको चौंका दिया। नीरजा स्वयं उसके साथ पुलिस स्टेशन गई। सुगली के बेटे की तलाश में पुलिस जगह-जगह छापे मार रही थी। जल्दी ही वह गिरफ्त में आ गया। समाचारों में सब ओर उसके चर्चे थे। अपने दोस्त के साथ घर लौटती जिस युवती के गैंगरेप और मर्डर ने देश को दहला दिया था, उसके सभी आरोपी पकड़ लिए गए थे।

सुगली की हालत खराब थी। बेटे की इस हरकत से उसकी ममता मर गई। अपने घर में जो संताप उसने झेला... पति के बड़े भाई को कितना मान-सम्मान दिया था। मगर उसी भाई ने सारी सीमाएं तोड़ दी थी। जिस बेटे को अच्छे संस्कार देने के लिए उसने अपनी इच्छा से वनवास लिया, उसी ने स्त्री शरीर की इज्जत नहीं की। बल्कि वो तो अपने ताऊ से भी आगे निकल गया।

उस रात सुगली खून के आँसू रोई। ना कुछ खाया, ना पीया। बस रोती रही... खूब रोई... खूब रोई। उसने खुदको भी कसूरवार ठहराया। हालात पर रोने की जगह उसने दोषी का दोष समझा। और आखिर में अपने जीवित बेटे का श्राद्ध कर दिया।

अपने बेटे से नफरत हो गई थी उसे। जितना वह बेटे से दूरी बनाना चाहती थी, अड़ौस-पड़ौस और पहचान के लोग उतना ही ज्यादा बेटे का जिक्र करते। कितने ही लोगों ने उससे रिश्ता खत्म कर लिया था। नीरजा भाभी के घर से जाकर वह शाम के समय फल बेचने का ठेला लगाया करती थी। इस घटना के बाद से उसके ग्राहक टूट गए। उसकी पहचान सिर्फ 'बलात्कारी की माँ' हो गई थी। सभी ने उससे दूरियाँ बना लीं। वह अपने आपको कटघरे में खड़ा करती, सवाल करती। बार-बार पूछती कि सारे हिसाब औरत की देह पर ही क्यों होते हैं? महाभारत के युद्ध का जिम्मेदार द्रोपदी को बनाने वाला समाज, आज एक माँ के पीछे पड़ा है। बाप की गलती कोई नहीं मानता, माँ पर तलवारें तान दी गई हैं। वह सोचती रही कि आखिर में कसूरवार वह कैसे हो गई।

सुगली नियम से सुबह-सुबह सारस्वत परिवार के घर पहुँच जाती। दोपहर तक काम करवा कर वह अपने दूसरे काम पर लग जाती थी। कभी-कभार अधिक काम होने पर नीरजा उसको ज्यादा देर तक रोक लेती थी। ठेले के ग्राहक टूटने से उसका काम बंद हो गया। उसके सभी काम छूट गए, ठेले से होने वाली आमदनी बंद हो गई थी। सुगली को परेशान देखकर नीरजा ने फुल टाइम के लिए उसको, अपने घर काम पर रख लिया।

कुछ दिन वह उदास रही। फिर समय की छड़ी ने उसका जीवन भी बदल दिया। नीरजा भाभी से उसे परिवार जैसा सम्मान मिलने लगा। अपना घर उसको शायद ही याद आता था लेकिन झोपड़ी पर कब्जा बनाए रखने के लिए वह रात अपनी बस्ती में चली जाया करती है।

'भाभी, आस-पड़ोस से दीमक की शिकायत आ रही है। अपना घर भी देख लें, कहीं दीमक सब कुछ चुपके से चट कर जाए और हम

देखते ही यह जाएं।' एक दिन दोपहर का काम खत्म करने के बाद सुगली ने स्टोर की ओर संकेत करते हुए कहा।

'कल देखते हैं।' नीरजा ने उसको टाल दिया।

'तो फिर हम गमले सुधार रहे हैं।' कहती हुई वह पौधों की गुड़ाई में लग गई। असली बात यह है कि सुगली से खाली बैठा नहीं जाता। दोपहर के समय जब नीरजा आराम कर रही होती है, कोई ना कोई काम वह अपने लिए ढूँढ ही लेती है।

'आज फिर सुगली दीदी ने सब सूगला कर दिया।' बालकनी में गमलों की गुड़ाई करते समय फर्श पर फैली मिट्टी देखकर नीरजा के बेटे ने कहा।

'बोलने से पहले सोचा करो। और भाषा समझे बिना बोलना तो सबसे बड़ी गलती है।' दादी माँ की आवाज़ से वह चौंक गया।

'दादी माँ सुगली तो गंदगी होता है न। इसका मतलब दीदी, गंदी है। गंदगी फैलाती है।' अंग्रेजी मीडियम स्कूल में पढ़ने वाले बच्चे ने कहा।

'जितना हम जानते हैं, जानकारी उतनी ही नहीं होती। जानकारी की सीमा असीमित है। किसी विषय के बारे में हम जितना जानते हैं, उससे ज्यादा वह अनजाना रह जाता है।' इन दिनों बच्चों को दादी की कही बातें कम समझ आती हैं।

'अब इसमें जानकारी कहाँ से आ गई!' दादी की टोकाटाटी से चिढ़कर बेटे ने कहा।

'हम तो शब्दकोश के जमाने के हैं। उसमें भी सारे शब्द नहीं मिलते थे। तुम्हारे गूगल में तो सब मिल जाता है, फिर भी तुम नहीं खोजते।' दादी ने फिर टोक दिया। दादी की झिड़की से बेटे का मुँह बन गया।

'जिसे तुम सुगली कहते हो, वो सुगली है। बड़ी ऊ की मात्रा से जो गंदगी का पर्याय बन जाती है, वही छोटे उ की मात्रा लगते ही सुन्दरतम स्त्री, यानी सुगली हो जाती है। सुंदर वही होता है जो सुंदरता फैलाता है।' इस नई जानकारी से बच्चे हैरान थे।

'मैंने कहा था ना कि जब तक मेहनत नहीं करोगे, तब तक सब आसान लगेगा। पर बिना मेहनत किए, तुम बिना आत्मा के शरीर जैसे रहोगे। हर अनजान चीज़ के बारे में जानकारी जुटाना सीखो।' बच्चों को इस बार भी शायद ही कुछ समझ आया, मगर जिसे समझना था, वह समझ गई।

उसका गांव जाने का चक्कर बच गया था। सुगली की अपनी माँ से सवाल करने की परेशानी खत्म हो गई थी। सबसे बड़ी बात

थी कि आज उसे अपने आप से प्यार-सा होने लगा था। जिस नाम ने उसे परेशानी में डाल रखा था, आज उसी नाम ने उसे बहुत सारी खुशी दे दी थी। दिन भर काम करते हुए उसके हाथों में जोश सा बना रहा। कितनी ही बार वह किसी लोकगीत की धुन को गुनगुनाती हुई अचानक झेंप कर चुप हो गई। कुछ भी नहीं बदला था इसके बावजूद सुगली के लिए ना जाने क्या बदल गया था। मुस्कान उसके चेहरे पर फैल गई थी। उस दिन काम खत्म करने के बाद सुगली, देर शाम अपने घर गई।

यह सुबह बच्चों के स्कूल जाने की तैयारी का समय था। वह सास-ससुर के लिए कोरे दूध वाली चाय और बच्चों के लिए नाश्ता तैयार करने में जुटी हुई थी। दूसरी ओर टिफिन पैक करना, पति के लिए कम दूध की चाय बनाने में नीरजा की सांस फूल रही थी। हर दिन सूरज निकलने से पहले घर की घंटी बजने का मतलब होता था कि सुगली आ गई है। वह नीरजा का आधा काम सम्हाल लेती थी। आज से बच्चों की परीक्षा शुरू हो रही हैं। कल कह कर गई थी, 'सुबह आती हूँ भाभी।' फिर...

बच्चे स्कूल जा चुके थे। सूरज निकल आया था मगर सुगली का कहीं कोई अता-पता नहीं था। नीरजा ने दो बार फोन भी किया लेकिन फोन स्विच ऑफ था। सास-ससुर पड़ोस के पार्क में सैर कर लौट आए थे। उनके लिए दूसरी बार चाय बन रही थी। पति के लिए नाश्ता बनाते हुए बीच में नीरजा ने एक बार और फोन लगाया। सबके लिए सुबह के काम निपटाकर उसने बर्तनों का मोर्चा सम्हाला। एक ओर धुलाई के लिए मशीन में कपड़े लगाकर दूसरी ओर उसने दोपहर के भोजन की तैयारी शुरू कर दी। इस सबमें उसको महसूस हुआ कि अब हिम्मत जवाब देने लगी है। सफाई उससे नहीं होगी।

'एक बजने को आया, अब तक नहीं आई। कहाँ रह गई आज।' झुंझलाहट बढ़ रही थी। एक बार फिर फोन लगाया मगर परिणाम पहले वाला ही था। दिनभर वह गृहस्थी की ज़िम्मेदारियों से जूझती रही। दिन ढल जाने को था। पति के दफ्तर से आते ही वह ट्रे में चाय के कप के साथ हाज़िर थी। थकान से पार पाने के लिए उसने अपने लिए भी चाय बना ली। पति ने समाचार देखने के लिए टेलीविजन ऑन किया। स्क्रीन पर झुग्गी-झोपड़ी दिखाई दे रही थी। झोपड़ी के सामने बैठी महिला को देखकर नीरजा चौंक गई।

"सुगली!!!" उसके मुंह से एक ही शब्द निकला। आवाज़ पूरे घर में फैल गई। "कहाँ है?", "आ गई क्या?" के सवालों की गूँज से घर भर गया। धीरे-धीरे पूरा परिवार टेलीविजन के सामने था और स्क्रीन पर थी, सुगली।

दरवाज़े की घंटी बज रही थी। हैरान-पेशान से परिवार का कोई भी सदस्य न्यूज़ को बीच में छोड़कर दरवाज़ा खोलने के लिए जाने को तैयार नहीं था। बच्चे छोटे थे, सास-ससुर बुजुर्ग और पति थका-हारा लौटा था। कई बार, और लगातार बजती डोर बेल से परेशान होकर नीरजा ही दरवाज़े पर पहुँची। सामने सोसायटी के कुछ पदाधिकारी, चेयरमैन और मैनेजर थे। सारस्वत जी की थकान अचानक मिट गई। हाथ में पकड़ा कप, ट्रे में रखकर वे लीविंग रूम में आ गए। ससुर जी भी मीटिंग का हिस्सा बनने के लिए पहुँच गए थे। लौटती सर्दियों की देर शाम सोसायटी के सदस्य फरमान लाये थे कि कल से सुगली का सोसायटी में आना मना है। दिल्ली के बलात्कार कांड का कोर्ट से फैसला आ गया था। आठ साल लगे सुपर ट्रैक कोर्ट से फैसला आने में। सजा के अनुसार सुगली के बेटे को फाँसी की सजा सुनाई गई थी। 'बलात्कारी की माँ हमारी सोसायटी में नहीं आएगी। उसके सोसायटी में आने से हम सबकी बदनामी होगी।' समाज के महत्वपूर्ण लोगों ने एकसाथ मिलकर यह निर्णय ले लिया था।

'बलात्कारी उसका बेटा है, वह नहीं। उसे किस बात की सजा दी जा रही है?' नीरजा ने कहा।

'उसके यहाँ आने से हमारी सोसायटी में मिडिया भी आने लगेगी। हम सब इज्जतदार लोग हैं। हमारी बदनामी होगी।' 'कमेटी' के लोग अपने निर्णय पर अटल थे।

नीरजा याद कर रही थी कि सासू माँ की तबीयत खराब होने पर किस तरह सुगली ने उनकी मालिश की थी। बच्चों के जूते चमकाने हों या उनकी फरमाइश का भोजन पकाना हो, वह हमेशा आगे रहती है। नीरजा के बुखार हुआ था तब सुगली ने पूरे घर की ज़िम्मेदारी अकेले उठा ली थी। जबकि सोसायटी के इक्का-दुक्का लोग ही उसका हाल पूछने आए थे। जो आए, उनका चाय-पानी भी सुगली ने ही किया।

'बेटे की गलती की सजा उसकी माँ को नहीं दी जानी चाहिए। उसका काम छूटा तो वो भूखी मर जाएगी या पेट भरने के लिए चोरी करेगी। तब तो हम कसूरवार हुए ना।' नीरजा सोसायटी के फैसले के खिलाफ थी।

'सारस्वत जी कामवालिओं का क्या है, एक हटाओ तो चार नई आ जाती हैं। इज्जत गई तो नहीं लौटती। भाभीजी को दूसरी कामवाली मिल जाएगी।' अपने तर्क पर अडिग कमेटी मेंबरस सारस्वत परिवार को समझा-बुझाकर कर लौट गए।

"सुगली हर सुख-दुख में मेरे साथ खड़ी होती है। आज उस पर दुख आया है तो क्या मैं उसका साथ छोड़ दूँ?" सोसाइटी मेंबर्स के तर्क को मानने के लिए नीरजा तैयार नहीं थी।

'हम सोसायटी में रहते हैं। यहाँ के रूल तो मानने ही पड़ेंगे।' पति ने समझाया।

'मैं सोसायटी की महिलाओं से बात करूंगी। कल को उनके परिवार के किसी पुरुष ने ऐसा किया तो क्या उन्हें भी सोसाइटी बाहर निकाल देगी?' नीरजा अपनी धुन में बोले जा रही थी।

'कोई तुम्हारा साथ नहीं देगा। जाओ, बात करके देखलो।' पति ने चिढ़कर कहा।

'मैं एनजीओ के पास जाऊंगी या महिला आयोग... आप तो मेरे साथ हो ना।' अचानक उसने पलट कर सवाल किया। पति को इस सवाल की उम्मीद नहीं थी। ससुर जी चुपचाप उसे घूरते रहे। कुछ देर इंतजार कर वह उठ खड़ी हुई।

यहाँ दीमक का प्रकोप बढ़ता जा रहा है। उसको इस तरह के जीव-जंतुओं से लिजलिजापन महसूस होता है। उसे लगता है कि बहुत देर एक मुद्रा में बैठे रहने से वह जड़ हो गई है। जैसे दीमकों ने उसके शरीर में घुसने का रास्ता बना लिया है और अब वे उसके शरीर में खून के साथ-साथ बहने लगी हैं। लगातार बढ़ते हुए दीमकों को हृदय तक पहुँचने का रास्ता मिल गया है। वह जानती है कि इसका परिणाम हार्ट अटैक ही होने वाला है। अचानक वह उठ खड़ी हुई। वह इस अटैक से खुदको बचा लेना चाहती थी। पति ने हैरान होते हुए उसकी ओर देखा। बहुत सारे पुरुषों को एकसाथ घर आया देखकर बच्चे तो पहले ही सहम गए थे। सास-ससुर भी उसकी इस हरकत पर अचकचा से गए।

मगर वह नहीं रूकी। उसके कदम सुगली के घर की ओर बढ़ चले। वह जानती है कि अपने घर में लगी दीमक का ईलाज उसे खुद ही करना है। हो सकता है कि दवाई की कड़वाहट पूरे परिवार को बर्दाश्त करनी पड़े। यदि ऐसा हुआ तब भी वह अपना घर बचाने के लिए इस बिमारी का ईलाज करेगी, जरूर करेगी। -दिल्ली, ईमेल: yvandana184@gmail.com

लघुकथा : वन्दना यादव

ईनाम'

रामनारायण के खिलाफ अक्सर शिकायतें मिलती थीं। टिकटों की धांधली रोकने के लिए रोडवेज विभाग ने कई तरह के इंतजाम किए मगर वह हर बार सवा सेर साबित होता।

फ्लाइंग दस्ते के कर्मचारी उसे रंगे हाथ पकड़ने का जाल बिछा चुके थे। रामनारायण का लालच इस बार मात खा गया। लंबी दूरी की सवारियाँ बिना टिकट ले जाते हुए वह पकड़ा गया। उसके पास मौजूद सभी टिकट और पैसे ज़ब्त कर लिए गए। तुरंत कार्रवाई करते हुए उसे विभाग के वरिष्ठ अफसर के सामने पेश कर दिया गया।

उल्टा आरोप लगाते हुए रामनारायण ने फ्लाइंग दस्ते पर धूस का इल्जाम लगा दिया। उसने बताया कि फ्लाइंग दस्ते ने आधे पैसे की माँग रखी थी परन्तु रोज-रोज अपराध करने से मना करने पर ही उसको दोषी ठहराया जा रहा है। सबूत के तौर पर उसने दो स्टेशन बाद उतरने वाली टिकटों की गिनती करवा दी। वास्तव में कंडक्टर के झोले में दो टिकट कम पाई गईं।

अब रामनारायण के साथ उसे पकड़ने वाला अधिकारी भी घेरे में आ चुका था। कुछ देर का अकेलापन मिलते ही उसने अपनी स्वाभाविक बेशर्मी से अधिकारी को धमकाया, 'साहब, मैं तो गया पर अब ये सोचो कि आपका क्या होगा? बहुत ईमानदार बनते थे... लग गई ना कालिख। आपके नाम की दोनों टिकटें मैंने फाड़कर फेंकीं थी। और डालो मुझपर हाथ। नौकरी तो गई सो गई, जेल में सड़ोगे मेरे साथ, सो अलग। मिल गया ईमानदारी का ईनाम, कौन भरोसा करेगा तुम पर और तुम्हारी ईमानदारी पर?'

भौचक अधिकारी आँखें फाड़े भविष्य में मिलने वाले 'ईनाम' की तस्वीर बनाने-मिटाने में उलझ गया।

-दिल्ली, ईमेल: yvandana184@gmail.com



यात्रा वृत्तांत अंश

‘सिक्किम : स्वर्ग एक और भी है।’



वन्दना यादव

इतिहास की छाँव में

(पृष्ठ संख्या 74 से 78)

छातन एक बहुत प्राचीन गांव है। यहां अपने आप में कई सौ वर्षों का इतिहास समेटे बौद्ध मठ हैं जो मुख्य आबादी से इतनी दूर होने के कारण आज भी अपने मूल स्वरूप में ज्यों के त्यों बचे हुए हैं। इस विशालकाय बौद्ध मठ की बाहरी बनावट, भीतर बनी

कलाकृतियां, नक्काशी, लकड़ी और धातु की मूर्तियां, भित्ति चित्र देखते ही बनते हैं। फोडोंग मठ (शायद यह सही उच्चारण है) को अठारहवीं शताब्दी में कर्मपा लामा द्वारा स्थापित किया गया। कागयु संप्रदाय के प्रमुख मठों में से एक, इस बौद्ध मठ के भित्ति चित्र देखने लायक हैं। लकड़ी की बनी छत की भीतरी नक्काशी हो या उपरी मंजिल की खिड़कियों पर बने लकड़ी और शीशे की कारीगरी हो, सब कुछ इतना अद्भुत था कि कई सौ वर्षों पहले की इस बारीक कारीगरी को देखते हुए हम बार-बार अचंभित होते रहे। पहली मंजिल पर जाने के लिए एक साथ दो-तीन लोगों के आने-जाने जितनी खुली और सहज उंचाई वाली सीढ़ियां, उपरी मंजिल पर सूरज की रौशनी एवं ताजा हवा का स्वागत करतीं कतार में बनी खिड़कियां उस दौर की इंजीनियरिंग पर फक्र करने को मजबूर कर रही थीं। इस बौद्ध मठ से कुछ आगे ही महिलाओं के लिए बनाया गया प्रार्थना स्थल भी है जो अपने गौरवशाली इतिहास को समेटे उपेक्षित खड़ा है।

स्थानीय गाइड ने बताया कि बौद्ध मठ की स्थापना काल के पहले से ही महिलाओं के लिए यह स्थल मौजूद था। जब मैं इसे देखने गई, यह उस समय बंद था। चाह कर भी मैं इसे भीतर से नहीं देख सकी।

मैं, महिलाओं के इस प्रार्थना स्थल का मुख्य दरवाजा देखना चाहती थी। शायद मेरे भीतर उस स्थान को भीतर से देखने की दबी हुई इच्छा आकार ले रही थी। दूर बने विशाल मगर बिना नक्काशी वाले साधारण से लकड़ी के प्रवेश द्वार के बाद लगभग पूरा गोलाकार चक्कर लगा कर गाइड ने मुझे एक छोटे से दरवाजे के सामने खड़ा कर दिया। दरवाजा इतना छोटा था कि इसमें से कोई छोटा जानवर ही प्रवेश कर सकता था। मेरे सवाल का जवाब उसने कुछ सम्हल कर दिया, ‘मैडम महिलाओं के अलावा यहां कोई नहीं जा सकता था। यहां सिर्फ महिलाएं रहती थीं इसीलिए सुरक्षा के लिए दरवाजे को इतना छोटा रखा गया था।’

इस प्रार्थना स्थल के अंदरूनी हिस्से में ठंड से बचाव और पानी गर्म करने के लिए बड़ी-बड़ी अंगीठियों के इंतजाम थे। भीतर खाना बनाने और धार्मिक कार्यों के लिए पर्याप्त स्थान बनाए गए थे। बेसमेंट से लेकर यह इमारत भी धरती के ऊपर दो मंजिल तक बनी हुई है। स्थानीय लोग बड़े गर्व के साथ बताते हैं कि इस इमारत में सिर्फ महिलाओं को प्रवेश की इजाजत रही है। मेरे आग्रह के बावजूद बंद दरवाजे मेरे लिए नहीं खोले गए क्योंकि यहाँ महिला टूरिस्ट (बाहरी व्यक्ति) को अंदर जाने की आज्ञा नहीं है। यह स्थान बौद्ध धर्म से जुड़ी, और जीवन का त्याग कर चुकी महिलाओं और इसी धर्म की

विधवा महिलाओं के आसरे के लिए जानी जाती थी जो फिलहाल खाली है और धीरे-धीरे खंडहर में बदल रही है।

यहाँ के मठों और अन्य इमारतों के भीतर बसे जीवित इतिहास को महसूस करते हुए अपनी जानकारीयों के सीमित होने का अहसास मुझे एक बार फिर होने लगा। आज जहाँ हम महिलाओं के लिए रिजर्वेशन की वकालत करते हैं, मथुरा में इसी तरह की विधवा या परित्याक्यता महिलाओं के आश्रमों के इतिहास पर बात करते हैं, उस समय भी हमें यह मालूम ही नहीं होता है कि अपने ही देश के एक हिस्से में सदियों पहले महिलाओं के लिए इसी तरह की कोई व्यवस्था कभी रही भी थी।

हम उत्तर भारतीय लोग अपने देश के सुदूर इलाकों के जीवन और संस्कृति के बारे में कितना कम जानते-समझते हैं। हमारे विशाल मंदिरों और अन्य धार्मिक स्थलों की तरह पूरे भारत के अलग-अलग हिस्सों में धर्म, स्थापत्य कला और साहित्य एवं संस्कृति पर लगातार काम होते रहे। जहाँ जो इंसान रहा, उसने अपनी-अपनी धार्मिक आस्थाओं के अनुरूप इतिहास बनाने और संजोने में अपना योगदान दिया। दोपहर ढलने को थी। सुबह से आसमान में चमकते सूरज को काले-गहरे बादलों ने ढक दिया था। बरसात अपना घनघोर रूप धारण करने को थी। हमें सुरक्षित अपने ट्रांजिट कैम्प में लौटना था। गाड़ी की पहुँच से दूर बने इस प्रार्थना स्थल से विदा लेकर पैदल रास्ता पार कर हम अपनी मंजिल के लिए बढ़ चले। आसमान भी आज की मेरी इस अनोखी खोजी यात्रा पर खुश था। उसने प्राचीन काल में बनी इमारत के आबाद होने के सबूत तलाशने वालों पर अपनी मेहरबानी विकराल रूप में दर्ज करवाई।

ठंड बढ़ रही थी। अपनी छोटी सी सुरक्षित जगह पर लौटते ही गर्मागर्म चाय हमारा इंतजार करती मिली। मैंने अपनी डायरी उठा ली थी हर लम्हे को उसी रूप में दर्ज करना ज़रूरी था।

तुम शहर-ए मोहब्बत कहते हो...

हम अगले दिन भी जल्दी उठ कर अपनी उस यात्रा के लिए तैयार थे जिसके लिए यहाँ तक आए थे मगर उपर से सिमल आने का इंतजार करना मजबूरी थी। अल सुबह उपर पहुँचने पर ही थांगू स्थित सैनिक पोस्ट हमारे जैसे टूरिस्ट को 'गुरु दोंगमा झील' की ओर जाने की इजाज़त देती है। मैं बताती चलूँ कि इस समय हम उत्तरी सिक्किम के अंतिम गांव की ओर दोबारा जाने की बात कर रहे थे परन्तु उस दिन भी हमारा इंतजार कामयाब नहीं हो सका। खबर हमारे हिस्से में सकारात्मक नहीं थी। उपर बर्फबारी पिछले दिनों के मुकाबले और ज्यादा बढ़ गई थी जो इस बात का संकेत था कि अब दो-चार दिन मौसम बिल्कुल भी अनुकूल नहीं रहेगा। तीन दिन से ज्यादा हम वहाँ

रुक नहीं सकते थे। वापस लौटना हमारी मजबूरी थी। मगर रोमांच यहीं खत्म नहीं हो रहा था। दरअसल रोमांच तो वह होता है जो हर बार पहले से ज़्यादा चकित कर दे। तीसरे दिन की बात है जब दिन निकल आया था, हमने वापसी के लिए अपनी यात्रा शुरू कर दी थी। पिछले दिनों हुई बारिशों ने पहाड़ों पर अपना असर छोड़ा था। जगह-जगह पहाड़ सरकने और ढहने के निशान हमें मिल रहे थे। लगातार चलते हुए हमने लगभग एक घंटे का रास्ता पार कर लिया था कि उसी समय अचानक दाहिने ओर के उंचे पहाड़ से एक बड़ी सी चट्टान बिल्कुल हमारे सामने आ गिरी। गाड़ी की स्पीड कम ही थी इसीलिए गाड़ी में ब्रेक लगाने में दिक्कत नहीं आई। मेरे पति और ड्राइवर नीचे उतरे, बहुत सम्हल कर इन दोनों ने चट्टान को सरकाते हुए सड़क के किनारे किया और जैसे ही गाड़ी में आ कर बैठे, उपर से धड़धड़ाते हुए कुछ पत्थर और चट्टानें हमारी गाड़ी पर और गाड़ी के सामने थे। इससे पहले अनेक मौकों पर मैं मौत से आँखें मिला कर सही-सलामत लौटी हूँ मगर उस दिन पहली बार किसी को अपने सामने मौत देख कर डरते हुए देखा। अपनी उम्र के पैंतीसवें वर्ष के आसपास के दौर का ड्राइवर घबरा गया। स्टेयरिंग उसके हाथ से छूट गया और लगभग वह उंची आवाज़ में रो ही दिया था कि कुछ अच्छी किताबों को पढ़ने और उम्दा किस्म की डाक्यूमेंट्री देखने के अनुभव हमारे काम आ गए। हम चारों ने एक साथ, एक सुर में उसका हौसला बढ़ाया। चलो भैया, चल बेटा की आवाज़ डर के पलों में शायद उस तक नहीं पहुँची मगर मेरा और मेरे पति का उसको थपकी दे कर चल-चल, चाबी लगा गाड़ी में, शाबाश चल कहना उस तक पहुँच गया। उसने एक बार हमारी ओर देखा, उसे हमारी आँखों में भरोसा दिखा। घबराए-कांपते हाथों से उसने चाबी लगाई, गाड़ी स्टार्ट कर जैसे ही हमने वह दस-पंद्रह कदम की दूरी पार की, उपरी चट्टानें धड़धड़ाती हुई नीचे आ गईं। पहाड़ का इतना बड़ा हिस्सा नीचे आ गया था कि सड़क, मलबे से पूरी तरह ढक गई। दरअसल पहाड़ों में जिस जगह से मिट्टी अपनी पकड़ खो देती है, वहाँ से चट्टान खिसकने लगती हैं। ऐसी सरकती हुई चट्टानें उँचाई से लुढ़कती हुए अपने आकार के कारण और अधिक विध्वंसक हो जाती हैं और बड़े हादसों का कारण बनती हैं। हमने कुछ पलों के लिए गाड़ी रोक कर पीछे देखा। कुछ सेकेंड्स के फासले से हमने मौत को मात दे दी थी। ड्राइवर के हाथ अब भी काँप रहे थे मगर उसके चेहरे पर एक विजयी मुस्कान थी। इस घटना ने उसे हौसला दिया। हमारी गाड़ी बढ़ चली उस रास्ते पर जो लगातार कठिन होता जा रहा था। कितनी ही जगहें ऐसी आईं जहाँ हमारे पहुँचने से पहले पहाड़ सरक कर सड़क पर पहुँच गया था और हम जैसे-तैसे कर उस कठिनाई को पार करते हुए गहरी खाइयों का ग्रास बनते-बनते बच गए।

लगातार चलते-चलते हम किसी अदृश्य ताकत के लिए शुक्रगुजार थे जो हमें हर बार सिर्फ कुछ सेकेंड के फासले से सुरक्षित बचा कर निकाल रही थी। इस बार सुरक्षित सी लगती जगह पर ड्राइवर ने गाड़ी रोकी, 'सर मुझे दो मिनट चाहिए।' 'उन दो मिनट के लिए हमारा पूरा परिवार भी गाड़ी से बाहर था। ड्राइवर हमारे पास ही खड़ा रहा। वह भी हमारी तरह इस अविश्वसनीय यात्रा पर विश्वास करने की कोशिश कर रहा था या शायद अपनी आंखों में उन दृश्यों को बसा लेना चाहता था जहाँ हर क्रतरे पर जीवन और मौत, एक साथ चल रहे थे। अब तक के दृश्य हमारे लिए शायद उतने रोमांचक नहीं थे इसीलिए प्रकृति ने हमारी स्मृतियों में बसाने के लिए इस बार जो किया, वह कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। हम पहाड़ की जिस उंचाई पर खड़े थे, गहरी खाई के पार वाला पूरा का पूरा पहाड़ अचानक हमारे सामने रेत के टीले की तरह भुराभुरा कर जमींदोज हो गया। अपनी आंखों पर इस बार भी यक्रीन करना हमें असंभव सा लग रहा था मगर हम पांच लोग एक साथ इस घटना के चश्मदीद थे। मैंने हाथ पर चिकोटी काटी, हम ज़िंदा थे। बिना एक शब्द भी बोले, सब नज़रों से एक-दूसरे से बातें कर जल्दी से जल्दी गाड़ी में सवार हो गए। हमारी गाड़ी इस बार दोपहर के भोजन के लिए भी नहीं रूकी। हम बस चलते ही गए, आगे से आगे बढ़ते गए और आखिरकार अपनी मंज़िल पर पहुंच कर रुके।

रास्ते में उन्नीस पहाड़ों को सरकते हुए हमने देखा। कितनी ही बार हमने मौत को चकमा दिया और ना जाने कितनी ही बार मौत हमें छू कर गुजरी। सुरक्षित सी दिखती जगह पहुँच कर एक प्रसिद्ध ग़ज़ल की सिर्फ एक पंक्ति मेरे ज़ेहन में आ रही थी, 'तुम शहर-ए मोहब्बत कहते हो, हम जान बचा कर आए हैं...'। -दिल्ली, ईमेल: yvandana184@gmail.com

लघुकथा : वन्दना यादव

'मेरा घर'

दिन भर काम करने के बावजूद घर का काम है कि गरीब की भूख की तरह मुंह बाए ही खड़ा रहता है। खाना, बर्तन, झाड़ू-पोंचा कर-कर के उसकी हालत खराब हो गई है। मुश्किल से चार दिन पहले पेशानी मिटी।

सारा काम समझा कर उसने लैपटॉप पर 'वर्क फ्रॉम होम' की फाईल खोली ही थी कि दरवाजे की घण्टी बज गई।

दरवाज़ा खोलने की आवाज़ आई थी, उसके बाद घमासान...

'चोरट्ट तेरी आँखें तो पहले ही मेरे घर पे थी। मैंने थोड़े दिनों की छुट्टी क्या कर लई कि पीछे से तूने मेरा ही घर कब्ज़ा लिया।'

'मैंने कब कब्ज़ाया? मेरा काम पसंद आया तभी ना रक्खा मुझे।'

'कर्मजली चल निकल बाहर इहां से, ई मेरा घर है।'

'तेरा जब था, तब था। अब यह मेरा घर है निकाल कर तो बता।'

लड़ाई, गाली-गलौच तक पहुँच गई थी। मार-पीट शुरू होने से पहले वह 'वर्क फ्रॉम होम' छोड़ कर घर सम्हालने के लिए दरवाजे की ओर लपकी।

'ये मेरा घर है, यहाँ जो भी होगा वो मेरी मर्ज़ी से होगा।' ऊँची आवाज़ में उसने दोनों को डाँट लगाई।

पुरानी कामवाली को घर से बाहर निकाल गुस्से से तमतमाते हुए वह सोफे पर जा कर बैठ गई।

'ये मेरा घर है...हाँ, मेरा घर है! ये लोग कौन होती हैं मेरे घर को अपना घर बताने वाली!' वह अपने आप पर यक्रीन करने की कोशिश कर रही थी। उसका बड़बड़ाना, लगातार चल रहा था।

उसे याद आया सुबह ही पति ने कहा था, 'मेरे घर में रहना है तो यहाँ सब मेरे हिसाब से चलेगा।'

'आखिर ये घर है किसका?' उसने अपने आप से पूछा।

'ये घर मेरा है!' फुसफुसाहट और बड़बड़ाहट को आवाज़ में बदल कर इस बार उसने खुद पर भरोसा करने का निर्णय ले लिया था।

-दिल्ली, ईमेल: yvandana184@gmail.com

‘कितने मोर्च’



वन्दना यादव

"जनवरी का महीना यूँ भी ठंडा ही रहता है पर आजकल सर्दियाँ सिकुड़ कर महीनेभर की रह गई हैं। इसी एक महीने में बदली भी बरस जाती है, धुंध भी पड़ लेती है और लोग-बाग धूप के लिए भी तरस लेते हैं।" सुनीता बता रही थी।

"बाजरे की खिचड़ी हो या मक्की की रोटी और सरसों का साग हो, सारे जायके चख लिये जाते हैं। चिकियाँ, गोंद के लड्डू और पिन्नियाँ भी खूब खाई जाती हैं। इन्हीं थोड़ी सी सर्दियों में मूली, आलू, गोभी और पनीर पराठों पर बटर लगा-लगाकर खाने का अपना मजा है।" सुरेंद्र कौर की बातों से मुंह में पानी आ गया।

"सब कहते हैं कि आजकल वो पहले वाली ठंड नहीं पड़ती... बेचारी ठंड को आफत बनकर पड़ने के लिए जगह भी तो चाहिए।" रीटा ने कहा।

"हर जगह एक-दूसरे से सटी, आसमान की ओर बढ़ती इमारतें खड़ी हैं। इन ईंट-सीमेंट और लोहे की छड़ों के जाल के बाहर निकलकर गाँव की ओर बढ़ते हुए पता लगता है कि ठंड आज भी पड़ती है। खुले इलाके में आज भी बहुत सारे बेघर, ठंड से जम जाते हैं। पाला अब भी पड़ता है... गांवों में ही नहीं शहरों और महानगरों में भी बेघर लोग रैन-बसेरों को तरसते हैं। लावारिस मौत मारे जाते हैं।" सहेलियाँ सर्दियों के मौसम में कितनी सर्दी पड़ती है, इस विषय पर बात कर रही थीं।

ऐसी ही एक ठंड से जमा देने वाली आधी रात बीतने के बाद कर्नल संदीप, कुसुम और दोनों बच्चे, गर्म रजाइयाँ छोड़कर जल्दी-जल्दी तैयार होने लगे। सुबह पाँच बजे तक सब तैयार हो गए थे। बाहर घुप्प अंधेरा था। गहरा अंधेरा सिर्फ अंधेरी रात का कमाल नहीं था। अंधेरे के बावजूद अगर कोई कमी रह गई थी तब उसे चारों ओर फैली धुंध ने पूरा कर दिया था।

कर्नल संदीप ने गाड़ी का स्टेयरिंग व्हील सम्हाला। कार चौधरी विहार की सीमा से बाहर निकलकर सड़क पर आ गई। स्ट्रीट लाइट

की मंद दीये-सी टिमटिमाती रौशनी, खुद से अपना परिचय करवाने का युद्ध लड़ रही थी। सारा परिवार गाड़ी से बाहर रास्ता पहचानने की कोशिश कर रहा था। चिर-परिचित रास्तों पर रेंगते हुए कार आगे बढ़ रही थी। मंज़िल से बहुत पहले, कड़े सुरक्षा इंतजामों की कई परतों से गुजरकर कर्नल संदीप ने पार्किंग में गाड़ी खड़ी कर दी।

अगले कुछ पलों में गढ़े जाने वाले इतिहास का गवाह बनने के लिए पूरा परिवार एक साथ पहुँचा था। चप्पे-चप्पे पर पुलिस और सुरक्षा बलों के कड़े इंतजाम थे। बताया गया था कि हवाएं तक पहरे की जद में है। आसमान में भी पहरे लगा दिया गये। आलम यह था कि पत्ता तक खडकने की जुर्रत नहीं कर सकता था। मगर सारे सुरक्षा इंतजाम आफत बनकर बरसते कोहरे को रोक पाने में असमर्थ थे। राजपथ तक बेरोक-टोक पहुँचने वाली स्वच्छंद हवाओं ने ठंड और ज्यादा बढ़ा दी थी।

सांस लेने और छोड़ने की प्रक्रिया में नाक का अगला हिस्सा गुलाबी हो गया था। आँखों से पानी बहने लगा। मारे ठंड के, उँगलियाँ अकड़ कर सूपस्टिक बन गई थीं। हमारे गणतंत्र दिवस की परेड देखने के लिए विश्व के सर्वोच्च शक्तीशाली राजनयिक कुछ ही पलों में पहुँचने वाले थे। इस बार के 'खास मेहमान' की सुरक्षा व्यवस्था भी 'खास' कर दी थी।

कार्यक्रम का हिस्सा बनने वालों से लेकर दर्शकों तक को उन पलों का साक्षी बनने से पहले कई सुरक्षा जाँच चक्र से गुजरना पड़ा था। पौ फटने तक लोगों का अच्छा-खासा जमावड़ा लग चुका था। सब अपनी-अपनी जगह व्यवस्थित हो गए थे। राष्ट्रपती और प्रधानमंत्री के पहुँचने से ठीक पहले अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार राजनीतिज्ञ जुटने लगे। जो जितना कद्दावर था, वह उतनी ही देर से प्रकट हुआ। सब अपनी शान के मुताबिक पहुँच रहे थे मगर कमाल की बात यह थी कि सब उस समय वहाँ उपस्थित थे जब उन्हें अपना चेहरा बड़े राजनीतिज्ञों को दिखाना था।

वास्तव में यह शौर्य और पराक्रम का उत्सव था जहाँ उपलब्धियों को याद करते हुए बहादुरी को सम्मानित किया जाना था। राजनेता अपने-अपने कद के अनुसार विराज चुके थे। नौकरशाही दिन-रात का फर्क भूलकर कार्यक्रम की सुरक्षा और सफलता में पिली

पड़ी थी। ऐसा लग रहा था कि उन्हें लम्बे समय से ठंड का अहसास होना बंद हो गया होगा। पूरे देश का सुरक्षा तंत्र मानो अपना सारा कौशल वहीं दिखाने वाला था।

और फिर चिरप्रतीक्षित घटना घटी। कार्यक्रम शुरू हुआ। भाषण, सलामी, और झांकियों के दौर चले। समूचा देश राजपथ पर उत्सव मनाता हुआ-सा लगा परन्तु जब जल-थल और वायु सेना की बारी आई, हर व्यक्ति जोश से भर उठा। बहादुरी और जाँबाजी की मिसाल पेश की गई। बलिदान और अनुशासन की अभूतपूर्व कहानियाँ दोहराई जाने लगीं। मेडल देकर योग्यताओं को सम्मानित किया जाने लगा। इसी बीच बरसात मेहरबान हो गई।

राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और विश्व की महाशक्ति के राष्ट्राध्यक्ष पर छतरियों तान दी गई। उन्हें सर्दियों की बरसात से बचाने के पुख्ता इंतजाम थे। जो सम्मानित होने आए थे, जिन्होंने जंग लड़ कर देश की रक्षा की थी, वे सावधान खड़े थे। अपनी जान पर खेलकर लोगों की जान बचाने वाले योद्धा, अपनी गौरव गाथा सुनाए जाने तक समूचे राजपथ पर कुर्सियों पर बैठे लोगों के सामने सावधान खड़े थे।

शौर्य गाथा सुनाए जाने का सिलसिला लगातार जारी था। इस समय अपने सिरमौर की शहादत के बाद उसकी वीरगाथा सुनने के लिए खुले आसमान में, बरसती फुहारों में, ठंड में, सिंहरन में, राष्ट्रीय ध्वज के नीचे, वह अकेली खड़ी थी।

"अजब रवायत है। जिसे सम्मानित किया जा रहा है, जिसके शौर्य और साहस को महिमामंडित किया जा रहा है, उनमें से ज्यादातर ने अपनी जान गँवा दी है। उन अदम्य साहस और अद्भुत जीवट वाले पराक्रमियों के परिवार बुलाए गए हैं सम्मान देने के लिए। वीर शहीदों के माता-पिता और पत्नियाँ खड़ी है भव्य कुर्सियों पर बैठे अपने राष्ट्राध्यक्षों के सामने।" किसने अपने साथ बैठी महिला का एक-एक शब्द ध्यान से सुना।

समूचा देश बैठा है, कुछ यहाँ, कुछ अपने घरों में टेलीविजन के सामने।

नागरिक, राजनेता और बड़े अधिकारी तक, सब बैठे हैं। वो औरत जो शहीद की पत्नी है, वही अकेली खड़ी है। अगर खड़ा होना सम्मान की बात है तो कम-से-कम इन कुछ मिनिटों के लिए तो सबको खड़ा हो जाना चाहिए। 'धीमी आवाज़ में बोलते हुए कुसुम कुछ पलों के लिए रूकी पर ज्यादा देर रूके रहना उसके बस की बात नहीं थी।

ये सम्मान पाने की सजा है या सजा की शुरुआत आज यहाँ से हो रही है?' लाउड स्पीकर पर होने वाली उद्घोषणा में उसके कहे शब्द दब-से गए। संक्षेप में गौरवगाथा सुनाए जाने के बाद की पंक्ति

उसने भी सुनी, 'अद्भुत साहस का परिचय देते हुए हमारे जांबाज (उस जांबाज सैनिक का नाम लिया गया) को अपने सर्वोच्च बलिदान के लिए शौर्य चक्र प्रदान किया जाता है।' उद्घोषणा के तुरंत बाद बहुत-से कैमरे उस चेहरे पर आकर ठिठके। दुख से दबे, आँसू विहिन चेहरे के तुरंत बाद महत्वपूर्ण पदों पर आसीन राजनेताओं के तरोताजा मुख स्क्रीन पर थे।

सम्मानित किये जाने के तुरंत बाद पहले से तैनात सुरक्षाकर्मी ने अपनी ड्यूटी निभाई। जनसाधारण की भीड़ से घिरी उस अकेली शहीद की पत्नी का मार्गदर्शन कर, उसे मंच से नीचे ले गया। इस प्रक्रिया में किसी किस्म की गलती की कोई संभावना नहीं थी। कई दिनों से चल रही तैयारियों ने अपने-अपने हिस्से की ड्यूटी अच्छी तरह समझ रखी थी। सारी घटनाएं एक के बाद एक यंत्रवत होती गईं... एकदम परफेक्ट मगर भावशून्य।

समारोह समाप्त हो गया। दूर खड़ी कार तक पैदल लौटते हुए सब लोग बेहिसाब भीड़ का हिस्सा थे।

'इतिहास का अंग बनना यादगार अनुभव रहा। देश अपनी स्वाधीनता का जश्न मना रहा है। अगले वर्ष तक यही जोश, यही जज्बा, यही उत्साह जारी रहेगा...'।

कुसुम ने अपने पति की कही बात को सुना मगर उस पर प्रतिक्रिया नहीं दी। कर्नल संदीप ट्रैफिक जाम से जूझने में व्यस्त हो गए। बच्चे भूख से परेशान थे। गाड़ी में रखे केक और बिस्कुट उनके लिए राहत का काम कर रहे थे। कुसुम भीतर तक उदास हो गई। उस अनजान औरत का भावहीन चेहरा, कुसुम की आँखों में आकर ठहर गया था। बुझे रंग की थकी-सी साड़ी में मुरझाए अरमानों के साथ, दुनियाभर की जिम्मेदारियों का बोझ सिर पर उठाए, सूनी आँखों वाली वह अकेली रह गई है। उसके लिए जीवन सिर्फ जिम्मेदारियाँ बन गई हैं। उसके जीवन से उत्साह हमेशा के लिए खत्म हो गए हैं...।

हर साल इसी तरह वीर नारियाँ आती रही हैं... आने वाले वर्षों में भी आती रहेंगी... देश के वीर सपूत, जन्मभूमि की रक्षा में अपने प्राणों का बलिदान देते रहेंगे... राजनीतिज्ञ बदलते रहेंगे, पर कुर्सी वही रहेगी। सम्मान का गौरव वही रहेगा... हर बार इसी तरह सूनी आँखें, निढाल कदमों से सम्मान लेने आती रहेंगी... पर... इन सम्मानों में उसे हमेशा के लिए छोड़कर जाने वाला उसका पति होगा... जो उसके बच्चों का पिता होगा... जिसकी कमी उसे खलती रहेगी...। बरस-दर-बरस यह उत्साह जारी रहेगा। हर बार नए कीर्तिमान, नए चेहरे, नए शहीद... नए शहीदों की पत्नियाँ... आने वाले समारोह में पिछले शहीदों का जिक्र नहीं होगा... उन्हें याद नहीं किया जाएगा...।

‘जब शहीदों को ही राष्ट्रीय स्तर पर भुला दिया जाना है, तो छब्बीस जनवरी की ठंडी हवाओं में शान से लहराते तिरंगे के नीचे खड़ी उस अकेली औरत का साहस और त्याग किसे याद रहेगा? वो भी गुम हो जाएगी... ट्रैफिक जाम की मारा-मारी में, अपनी गाड़ी आगे निकाल लेने वालों की भीड़, उस औरत को क्यों याद रखेगी?’ सड़क पर गाड़ियों की भीड़ पर नज़रें टिकाए वह कह रही थी

‘ये उत्सव किस कीमत पर मनाया जाता है, किसी को इस बात का अंदाज़ भी नहीं होगा। घरों से दूर, दुश्मन की गोली के निशाने पर बैठा फौजी क्या सोचता होगा...।’ कुसुम की बात सुनकर कर्नल संदीप की पकड़ स्टेयरिंग व्हील पर मज़बूत हो गई। बच्चे भी चुप हो गए। कनाट प्लेस में पूरे शबाब के साथ लहराते तिरंगे को देखकर वह सोच में पड़ गई।

‘फौजियों के नाम और उनकी गौरव गाथाएं उनकी युनिट में अक्सर दोहराई जाती हैं। कभी-कभी देश भी शायद उनको याद कर लेता होगा पर शहीद की पत्नी का कर्ज, ये देश कैसे चुकाएगा? देश के लिए जान देने वाले सैनिकों के बच्चों का जवाबदेह कौन है जो बिना बाप की छाया के बड़े होते हैं?’।

कर्नल संदीप के लिए पत्नी का यह स्वरूप एकदम नया था। गाड़ी चलाते हुए उन्होंने तिरछी नज़र से कुसुम को देखा। पति और बच्चों के साथ होते हुए भी वह कहीं बहुत दूर चली गई थी।

अपने हाथ पर उसे कुछ हरकत महसूस हुई। दूर आसमान देखती नज़रें, अपने हाथ पर केंद्रित हो गई। उसके हाथ पर संदीप का हाथ था। कुसुम ने संदीप की ओर देखा, संदीप ने अपने हाथ से कुसुम की उंगलियों पर हल्का-सा दबाव बनाया।

‘बहुत हो गया मैडम, हमसे दूर कहाँ चली गई? आ जाओ, वापस आ जाओ, हम यहीं हैं।’

कुसुम लौट आई। –दिल्ली, ईमेल: yvandana184@gmail.com

उपन्यास अंश पृष्ठ संख्या 164 से 167 : चैप्टर - सत्ताईस

‘शुद्धि’



वन्दना यादव

नींद में सोए इंसान को कुछ देर के लिए अपने तनाव से मुक्ति मिल जाती है। दोपहर की झपकी में यही राजसी सुख सीमा और उसके बच्चे उठा रहे थे। बंद दरवाज़े के भीतर अपने कमरे में विशाल कुटुंब से अलग, इन तीनों की बादशाहत थी। दिखावे और परिवार की राजनीति से वह उतनी देर मुक्त रहते जब तक अपने कमरे में होते। यहाँ उनका अपना

राज-काज था। अपने साम्राज्य में कोई शासक किसी दूसरे राजा की दखलंदाज़ी बर्दाश्त नहीं करता। पुष्कर नाम की शासन व्यवस्था इस राज्य से वर्षों पहले टूट कर बंट गई थी। तीनों शासकों ने उस छिन्न-भिन्न व्यवस्था को अपने साम्राज्य की सीमाओं से बाहर निकाल फेंका था। जिस तामझाम में समाज अब व्यस्त था, माँ और बच्चों का शक्तिशाली समूह वर्षों पहले उसका श्राद्ध कर चुका था।

उस दिन दोपहर बाद के समय जब तीनों अपनी दुनिया में मगन थे, उनकी सत्ता के दरवाज़े पर दस्तक हुई। मोबाईल के दौर में अपने

कमरे से निकल कर किसी ओर के कमरे में जाने से पहले दूसरे की सुविधा पता करना दोनों पक्षों के लिए सुविधाजनक होता है। ऐसे तकनीक प्रधान समय में बिना पूछे किसी का दरवाज़े पर आना भीतर वालों को असहज कर रहा था। यह दस्तक सिर्फ कमरे में दाखिल होने की नहीं, उससे बहुत आगे का हस्तक्षेप भी हो सकती थी। अपने व्यक्तिगत समय में किसी अनजान की आहट उन्हें अपनी सीमा रेखा में अतिक्रमण की आहट जैसी लग रही थी।

भीतर से ‘कौन है?’ पूछने पर एक समय के महा शक्तिशाली साम्राज्य की मल्लिका ने दरवाज़े के बाहर से जवाब दिया। आवाज़ कुछ पहचानी सी लगी। सूरज ने दरवाज़ा खोला, बाहर खड़ी शख्सियत को देख युवराज बौखला गया। उसने सामने खड़ी भूतपूर्व मल्लिका के मुंह पर अपनी राजधानी के द्वार लगभग बंद कर ही दिए थे कि सीमा ने ऐसा करने से पहले उसे रोक दिया।

‘मैं आपसे मिलने आई हूँ।’ दरवाज़ा खोलते ही सीमा को सामने देख कर उसने कहा।

‘हमें नहीं मिलना।’ कह कर सूरज ने उसकी फरियाद ठुकरा दी। माँ की समझाइश का युवराज के सैतालीस डिग्री तापमान पार

कर गए गुस्से पर कोई असर होता हुआ लग नहीं रहा था। पसीने से लथपथ सुगंध पर वक्रत इतना नाराज था कि सूरज को उसके वजूद से गंध आ रही थी। वह कमरे में प्रवेश करने के लिए बैचने थी जबकि सलतनत के युवराज को यह मंजूर नहीं हुआ।

‘आने दे बेटा।’ सीमा की बात सुनते ही बेटे की तीखी प्रतिक्रिया आई, ‘इतना बड़ी हवेली है ये कहीं भी घूमती रहे, हमारे कमरे में ही क्यों आना है इसे?’ माँ के दोबारा कहने पर बेटा और चिढ़ गया ‘क्यों आना है इसे यहां? और कितना घुसेगी ये हमारे लाईफ में?’ बेटा किसी तरह का समझौता करने को तैयार नहीं था। सीमा ने आगे बढ़कर बेटे के कंधे पर हाथ रख कर हल्का सा दबाव बनाया। भरोसे के स्पर्श से अविश्वास की चारदीवारी ध्वस्त हो जाती है। सूरज दरवाजे से हट गया। सुगंध को इसी पल का इंतजार था। कमरे के अंदर आ कर परिवार की ठंडक को भीतर रोके रखने के लिए दरवाजा बंद कर जैसे ही वह पलटी, सीमा ने कुर्सी की ओर संकेत कर उसे बैठने के लिए कहा।

‘मैं आप सबसे अकेले में मिलना चाहती थी।’ पसीना सुखा कर सुगंध ने पहला वाक्य बोला।

‘इतने सारे लोगों के बीच हम सब एक अलग परिवार हैं।’ सीमा और बच्चे इस हमले के लिए पहले से तैयार थे। तैयारी मुकम्मल होने के बाद पहला प्रहार सामने वाले की ओर से किए जाने का इंतजार करना कारगर रणनीति होती है। तीनों चुपचाप उसके सारे हथियारों के इस्तेमाल हो जाने का इंतजार कर रहे थे।

‘मैं एक-दो बार पहले भी आई थी पर...’ सुगंध ने अपनी बात अधूरी छोड़ कर सीमा और उसके बच्चों के कुछ कहने का इंतजार किया मगर उस ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं आई।

‘सीमा, पुष्कर के जाने का दुःख हम दोनों को है। तुम तो उसके साथ वर्षों से उससे जुड़ी हुई थीं। मैंने भी अपना सारा जीवन उसके नाम कर दिया। इस दुख ने हमें बराबर कर दिया है। सारी नाराजगी खत्म कर दो प्लीज, ये हमारा एक-दूसरे को हिम्मत बंधाने का समय है।’ उसकी आँखें नम थीं। अपनी बात कहते हुए उसने बारी-बारी से सीमा और बच्चों को देखा।

‘हम दोनों मिलकर बच्चों को बड़ा करेंगे। हमारा एक-दूसरे के सिवाय अब कोई भी तो नहीं है। अब हम सब साथ रहेंगे।’ यह सब कहने से पहले उसने ऐसा कहने का अभ्यास अकेले में कई बार किया होगा इसके बावजूद उसकी आवाज में थरथराहट थी।

‘सीमा, हम दोनों एक बराबर सी उम्र के हैं फिर भी मैं तुम्हें बड़ा मानने को तैयार हूँ। जैसा तुम कहोगी, वही करेंगे पर प्लीज पुष्कर के लिए मान जाओ कि हम सब साथ रहेंगे।’ सुगंध को इस बार भी जवाब नहीं मिला।

कुछ समय इंतजार करने के बाद उसने दोबारा बात शुरू की, ‘सीमा आई एम प्रेगनेंट। पुष्कर हमारे बच्चे को ले कर बहुत एक्साईटेड था। बहुत सारे सपने देखे थे हमने इसके लिए।’ अपने पेट के हल्के से उभार पर हाथ घुमाते हुए उसने सीमा को देखा। उस ओर से सुगंध को किसी तरह की हमदर्दी का संकेत नहीं मिला। वह अपना सबसे बड़ा हथियार चला चुकी थी। सारा गोला-बारूद इस्तेमाल करने के बाद वह सीमा के सामने बिना अस्त्र-शस्त्र के, हारे हुए शासक के समान निहत्थी बैठी थी।

‘मैं बहुत उम्मीद ले कर आई हूँ तुम्हारे पास, कुछ तो कहो।’ उसने दुश्मन के सामने हथियार डाल दिए। वह लगातार रोए जा रही थी। रोते-रोते उसकी हिचकियाँ बंध गईं। सीमा ने उसे पीने के लिए पानी दिया। पानी पी कर कुछ देर में वह सामान्य हो गई।

‘मुझे तुम से हमदर्दी है, बस हमदर्दी। यही दे सकती हूँ तुम्हें। इससे ज्यादा अपने पति के साथ रहने वाली औरत को देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है।’ इतनी देर में पहली बार सीमा ने कुछ कहा।

‘मुझे तुमसे शिकायत नहीं है। शिकायत तो पुष्कर से भी नहीं रही। जब आदमी घर से बाहर निकल ही गया तो वो कहीं भी जाए, क्या फर्क पड़ता है। ये ही उसका करेक्टर था। तुम मिल गईं, तुम नहीं होतीं तो कोई और होती, कोई और नहीं होती तब भी कोई ना कोई तो उसे मिल ही जाती! ऐसी फितरत के आदमी से कैसी शिकायत, कैसी उम्मीद?’ सीमा चुप हो गई। उसके लिए भी बीते दिनों को दोबारा जीना तकलीफदेह था।

‘आपने मुझे माफ़ कर दिया ना।’ सुगंध की आँखों में आंसू थे।

‘माफ़ तो अपनों को किया जाता है। तुम मेरी कोई नहीं हो। तुमसे ना मेरा कोई संबंध था और ना कभी रहेगा। हम यहाँ मिले, यहीं बिछड़ जाएंगे।’ सीमा ने बिना किसी लाग-लपेट के कहा।

‘हम दोनों पुष्कर के लिए तो जुड़े रह सकते हैं ना। वो हमारे जीवन की सच्चाई है। हम दोनों ने एक समय में उसके साथ जीवन बिताना चाहा था।’ वह गिड़गिड़ा रही थी।

‘हमसे छीन कर तुमने पुष्कर को जीत लिया था इसके बावजूद तुम्हारी झोली खाली है। कल तक तुम्हें मैं और मेरे बच्चे बुरे लगते थे, आज तुम हमारा साथ चाहती हो। कैसी चाहत है तुम्हारी? हर मौक़े पर बदलती इच्छाओं के साथ कैसे रहती हो?’ सुगंध को उम्मीद थी कि सीमा ऐसा कुछ कहेगी। शिकवा-शिकायत बातचीत का मौक़ा देता है जिससे सुलह की उम्मीद बंधती है। सुगंध की सोच को तब झटका लगा जब उसे महसूस हुआ कि सीमा और उसके बच्चों की ऐसी कोई मंशा नहीं है।

‘भावुकता सिर्फ बेवकूफी करवाती है ओर कुछ नहीं। कोरी भावनाओं में जीने वाले लोगों के लिए मेरे जीवन में कोई जगह नहीं है। सात साल पहले तक मैं जिन भावनाओं के कारण जीते-जी मार दी गई थी, अब उन्हें फिर ज़िंदा करने का मेरा कोई ईरादा नहीं। ‘सुगंध सर झुकाए सुन रही थी वह हताश थी मगर निराश नहीं। उसने इस सबके बीच एक और रास्ता खोज लिया, ‘हम सहेलियाँ बन कर तो रह सकते हैं ना। प्लीज़ ना मत कहना। ‘

‘एक शादीशुदा आदमी जिसकी पत्नी ज़िंदा है, उसके दो बड़े होते हुए बच्चे हों और वो आदमी पहली पत्नी को तलाक़ दिए बिना दूसरी औरत से रिश्ता बनाए और कमाल ये कि उस औरत को सब मालूम भी है, वो तुम्हारी सहेली हो सकती है, मेरी नहीं। मैं ऐसी औरत पर अपना एक सेकेंड भी खर्च नहीं करूंगी। ‘सीमा वहाँ से ऐसे उठी जैसे कमरे के उस हिस्से से उसका कोई संबंध नहीं था।

‘इस बच्चे का क्या कुसूर है? इसके लिए... सीमा ये हमारे पुष्कर का बच्चा है। ‘सुगंध ने इस बार अपना आत्मसम्मान भी कुचल दिया।

‘कल तक जो सपना तुम दोनों का था, अचानक आज तुम्हारे सपने को हम अपना सपना क्यों बनाएं? तुम्हारा, तुम्हें मुबारक। मुझे और मेरे बच्चों का इससे कोई लेना-देना नहीं है। ‘संधि प्रस्ताव पारित होने से पहले ही खारिज़ कर दिया गया। शाम की चाय का समय हो गया था। सीमा आंगन में जाने के लिए उठ खड़ी हुई। सुगंध के पास वहीं बैठे रहने का कोई कारण नहीं बचा। मजबूरी में वह भी चल पड़ी।

बाहर के मौसम ने भी अपना स्वरूप बदल लिया था। सब ओर धूल ही धूल थी। आसमान में चढ़ आई धूल ने सब कुछ मटमैला कर दिया था। बाड़े में मौजूद लोग अपने पालतू पशुओं को सुरक्षित स्थानों पर बाँधने में जुटे गए थे, घर में रह रहे लोग खिड़की-दरवाजे बंद कर रहे थे। मौसम का मिजाज़ देख कर सूरज को अपनी माँ की चिंता हुई उसने सीढ़ियों की ओर कदम बढ़ा चुकी सीमा का हाथ पकड़ कर उसे वापस कमरे में खींच लिया। सुगंध सीढ़ियाँ उतरती हुई शायद दूसरी मंज़िल के आसपास रही होगी। उपरी मंज़िल उससे दूर हो गई थी धरातल तक पहुँचने में अभी वक़्त लगना था। चिलचिलाती सूरज की किरणें आसमान तक चढ़ आई धूल के सामने बेबस थीं। चारों ओर अंधेरा घिर आया था सांय-सांय करती हवाएं हर चीज़ को मिटा देने पर आमादा थीं। शायद आज यह वैसी ही आँधी थी जिसमें अक्सर रेतीले टीले अपनी जगह बदल लिया करते हैं। –दिल्ली, ईमेल: yvandana184@gmail.com



मुस्कराहट के स्थायी पते वाली लेखिका: वन्दना यादव



आकांक्षा पारे काशिव

सबसे पहले एक घरेलू पार्टी में उनसे मिली थी। चेहरे तो कई मुस्करा रहे थे, लेकिन सबसे ज्यादा आत्मीयता इसी चेहरे में थी। परिचय हुआ, तो नाम पता चला वन्दना यादव। बहुत प्यार से बतियाई वे। तब उन्होंने नहीं बताया कि वे भी लिखती है। पूछने पर सहजता से बस इतना ही बोलीं, हां कुछ लिख लेती हूं। बाद में धीरे-धीरे परिचय प्रगाढ़ होता

गया और जाना कि उनका कुछ बहुत कुछ है। अब मेरे सामने सुधि पाठक और सजग रचनाकार वन्दना यादव थीं।

रचनाकार वन्दना यादव किसी परिचय की मोहताज नहीं हैं। वह सिर्फ साहित्यकार ही नहीं, बल्कि मोटिवेशनल स्पीकर, एंकर और समाज सेविका भी हैं। राजस्थान की रेतीली धरती का रूखापन उनके स्वभाव में दूर-दूर तक नजर नहीं आता। मैं जब भी उनसे मिली हूं, वे किसी लेखिका के तौर पर नहीं आत्मीय सदस्य के रूप में मिलती रही हैं।

अगर पहली मुलाकात पर लौटूं, तो साहित्यकार और अनुवादक अमृत बेरा के यहां एक छोटे से गेट टू गेदर कार्यक्रम में हम पहली बार मिले थे। पार्टी जैसा वहां कुछ नहीं था। बस कुछ दस-बारह लोग और खाना-पीना, साहित्य से इतर कुछ गप्पें मारने से ज्यादा कुछ नहीं था। वन्दना जी खुद पास आई और आग्रह के साथ अपने पास बैठा लिया। फिर बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ, तो वक्त पता ही नहीं चला। मुझे बहुत अच्छा लगा। क्योंकि दिल्ली जैसी जगह में इतनी आत्मीयता से मिलने वाले लोग कम ही मिलते हैं। उन्हें बहुत दूर जाना था। बात थी कि खत्म ही नहीं हो रही थी। वह उठी और प्यार से हाथ में हाथ लेकर बोलीं, अभी बहुत सी बातें बाक्री हैं, मुझे याद रखना, हम दोबारा मिलेंगे और फिर आज जहां से बात छूटी है, दोबारा वहीं से शुरू करेंगे।

इस बतियाने में एक बात छूट गई, जो मुझे घर पहुंच कर याद आई कि मैंने उनका फोन नंबर तो लिया ही नहीं। सोचा था किसी से भी मांग लूंगी। अमृता से ही ले लूंगी। लेकिन व्यस्तता में इस बात

का खयाल ही नहीं रहा। दो-तीन महीने बाद फोन की घंटी बजी और उधर से एक मधुर आवाज आई। कल आपकी क्या व्यस्तता है। मैंने बिना पहचाने ही कह दिया, दफ्तर ही रहूंगी। तो आप कल आ रही हैं मेरे घर, साथ खाना खाएंगे। अब मैं क्या बोलूं। नंबर सेव नहीं है और आवाज पहचान नहीं पा रही। कैसे पूछूं कि आप कौन हैं।

मेरे पॉज को वो जल्दी समझ गई हंस दीं। उन्होंने मुझे कोई उलाहना नहीं दिया कि तुम भूल गई, कि तुम्हारे पास मेरा नंबर भी नहीं है। घंटियों की तरह हँसी आवाज में बोलीं, मैं वन्दना यादव बोल रही हूँ। याद है हम अमृता के यहां पार्टी में मिले थे। अब शर्मिदा होने की बारी मेरी थी। मैंने माफी माँगी, तो बोलीं, कोई बात नहीं हो जाता है। अब मेरा नंबर सेव कर लो और कल जरूर आना अच्छा लगेगा।

मैं असमंजस में रही कि पहली मुलाकात के बाद ही सीधे घर जाऊंगी, तो पता नहीं कैसा लगेगा। लेकिन उनके घर जाकर लगा जैसे वो मेरा ही घर रहा हो। उन दिनों में हॉस्टल में रहती थी। उन्होंने मुझे बहुत आग्रह के साथ खाना परोसा। बार-बार कुछ न कुछ थाली में रख देतीं। हॉस्टल में रहती हो, ठीक से खाया करो। अरे ये खा कर देखो, इसका स्वाद अलग है। अरे ये अचार चखो।

इतने प्यार से तो मां ही खाना खिलाती हैं। उस दिन लगा कि उनके उपन्यास, कविताओं और बातों में यह प्यार आता कहाँ से हैं। क्योंकि उनके अंदर प्यार का एक झरना लगातार बहता है, जो किसी को अपने प्यास से प्यासे नहीं जाने देना चाहता। उनके लिए सब बराबर हैं।

जब आप उनका उपन्यास कितने मोर्चे पढ़ते हैं, तो पता चलता है कि जिस संवेदना के साथ वे सैनिकों की पत्नियों के बारे में लिखती हैं, दरअसल वह कल्पना की जमीन पर शब्दों की कोरी जादूगरी नहीं होती। यह संवेदना, दया, करुणा तो उनके मन में है, जो सबके प्रति उमड़ती है और इसी वजह से उनके पात्र इतने विश्वसनीय तरीके से उभर कर सामने आते हैं। उनका व्यक्तिगत स्वभाव आपको उन पात्रों के इतने करीब ले जाता है कि लगता है, वे पात्र आपके सामने, आपके आसपास के ही हैं।

उनके घर उस दिन बहुत से लोग थे। उन्होंने सभी का एक-दूसरे से परिचय कराया और कहा, आप लोग आपस में संपर्क बनाए

रखिएगा। साथ ही वे परिचय कराते वक्त दूसरे को यह बताना नहीं भूलें कि कौन किसी काम में किसकी सहायता कर सकता है।

थोड़ी देर के लिए तो मैं आश्चर्य में पड़ गई। कौन अपने लोगों से मिलवाता है ऐसे। हर व्यक्ति अपने संपर्क को लेकर इतना स्वार्थी है और एक ये हैं, जो हर किसी को अपने संपर्क दे रही हैं। वे सही अर्थों में साहित्यकार हैं, जो सिर्फ कागज पर ही नहीं जिंदगी में भी शब्दों और भावनाओं के अर्थों को समझता है।

उनकी नरम और मीठी बोली सुनकर ही लगता है कि वे मोटिवेशनल स्पीकर होंगी, तो कैसी होंगी। एक मोटिवेशनल स्पीकर की बात में कनविकशन हो और आवाज में विनम्रता। इन दोनों ही बातों की वंदना जी में कोई कमी नहीं है। वे एक उम्दा एंकर हैं, जो हर कार्यक्रम की गंभीरता और जरूरत के हिसाब से दर्शकों या श्रोताओं से मुखातिब होती हैं। मेरा उनसे एक खास तरह का न्यूमरोलॉजिकल रिश्ता भी है। मैं अक्सर लोगों से मजाक में कहा करती हूँ कि मेरी 3,6,9 वालों से बहुत पटती है क्योंकि मेरा मूलांक 9 है। जब यह बात मैंने उनसे कही, तो उनकी चिर-परिचित मुस्कान होंठों पर फैल गई और वे बोलीं, मतलब आपकी सूची में मेरी जगह तो पक्की है। सुलझी हुई और आत्मीय वन्दना जी से मेरा लगाव इस 9 सितंबर ने और पक्का कर दिया है। दिल्ली में जहां दूरियां लोगों को एक-दूसरे से मिलने से रोके रहती हैं, वहीं वन्दना जी के लिए दूरियां प्रेम के बीच बाधा नहीं बनतीं। जो उन्हें प्यार से बुलाता है, याद करता है, वे वहां हाजिर होती हैं। यह उनकी सबसे बड़ी खूबी है। मुझे एक दिन बातों-बातों में पता चला कि वे पहले पढ़ाती रही हैं। मैंने हंस कर कहा, आपसे तो कोई छात्र डरता ही नहीं होगा। वे हंसी और बोलीं, इसलिए तो मैं लेखन में आ गई। यहां सबसे डरना पड़ता है, किसी को डराना नहीं पड़ता। उनकी इस बात पर दोनों देर तक हंसते रहे।

उनका दूसरा उपन्यास शुद्धि जब मैंने पढ़ा तो जाना कि वे बोलती भले ही कम हैं, लेकिन जब लिखती हैं, तब उनके लेखन में कमाल की डीटेलिंग होती है। शुद्धि में वह घर-परिवार के सदस्यों के आपसी मन-मुटाव, प्रेम का ऐसा बारीक चित्रण करती हैं कि पढ़ते-पढ़ते लगने लगता है कि हर पात्र और उसके मनोविज्ञान पर कितनी गंभीरता से उन्होंने सोचा है। हर पात्र की एक पृष्ठभूमि है, जो धीरे-धीरे उपन्यास को उभारती है, धीरे-धीरे पाठक को उस परिवार का हिस्सा बना देती है।

परिवार की कहानियों में पात्रों के बिखराव को होने से वे शायद इसलिए भी रोक पाती हैं, क्योंकि ठहराव उनका स्वभावगत गुण है। यही ठहराव उन्हें अलहदा साहित्यकार बनाता है। बच्चों से भी उनका लगाव उनकी रचनाओं में साफ दिखाई पड़ता है।

सब्जियों वाले गमले, नीला आसमान ऐसी ही पुस्तकें हैं, जो बताती हैं कि वे सजग नागरिक भी हैं, जो बच्चों के बारे में भी सोचते हैं। उन्होंने नवसाक्षरों के लिए भी एक पुस्तक लिखी है, शीर्षक है, नतमस्तक। यानी वे समाज के हर तबके की चिंता करती हैं और साहित्य के माध्यम से इस चिंता पर काम भी करती हैं।

मेरा सौभाग्य है कि मैं उनकी मित्र सूची में हूँ। उनसे परिचय होना किसी के लिए भी आनंददायक होगा। वे चुपचाप काम करती हैं और खुल कर दोस्ती करती हैं। काम का ढिंढोरा नहीं पीटतीं और दोस्तों को अकेला नहीं छोड़ती। हँसता हुआ नूरानी चेहरा हमेशा यूँ ही रचनात्मक रहे, वे ऐसे ही रचती रहें, हम पढ़ते रहें। दिल से यही शुभकामनाएं।

—पत्रकार और साहित्यकार, दिल्ली

Email : akpare@gmail.com



वन्दना यादव

साहित्य के अलक्षित क्षेत्रों की जुझारू लेखिका, वन्दना यादव



अंजू शर्मा

वन्दना जी से पहला परिचय फेसबुक पर ही हुआ। वर्षों पहले हम लोग मित्र बने और एक सिलसिला शुरू हुआ। एक दिन उनकी तस्वीर सामने आई तो स्क्रोल करतीं मेरी उँगलियाँ ठिठक गयीं, आत्मविश्वास से भरा गोल चेहरा, मधुर मुस्कान, बड़ी-बड़ी आँखें जो सामने वाले के दिल में उतर जाने का हुनर जानती हैं, गले में रुद्राक्ष की माला और जिसे एक चीज पर निगाहें जाकर ठहर जाती वह है उनके माथे पर बड़ी सी गोल बिंदी। कुल मिलाकर ऐसा व्यक्तित्व जो एक बार देखने पर ही सामने वाले पर विशिष्ट प्रभाव छोड़ने में पूरी तरह सक्षम है। यही था मेरा वन्दना जी से प्रथम परिचय. सच कहूँ तो उनके स्नेह से भरे कमेंट मन को उनके प्रति जिज्ञासा से भर देते थे।

पहली मुलाकात भी शायद पुस्तक मेले में ही हुई या किसी आयोजन में ये ठीक से याद नहीं लेकिन मुलाकातें होती रहीं और उन्हें बतौर लेखिका भी जानने लगी थी और यही हमारे परस्पर परिचय का अगला चरण था। फिर उनका पहला उपन्यास कितने मोर्चे आया तो उन्होंने बहुत स्नेह से विमोचन के लिए आमंत्रित भी किया किन्तु किसी वजह से चाहकर भी मैं शामिल न हो सकी, इसका अफ़सोस तो हुआ पर ये अफ़सोस दूर हो गया जब मुझे मेरठ लिटरेचर फेस्टिवल से बुलावा आया और वहीं वंदना यादव जी के उपन्यास पर चर्चा का भी कार्यक्रम आयोजित होना था। लिहाजा उनसे इसके लिए वक्ता बनने का प्रस्ताव भी मिला और मैंने इसे सहर्ष स्वीकार किया।

मेरे पास वक्त अधिक नहीं था और उपन्यास भी कोई छोटा उपन्यास नहीं था. कोई 300 से अधिक पृष्ठों वाला एक वृहद् उपन्यास था। जब मैंने उपन्यास पढ़ना शुरू किया तो मैंने पाया कि यह उपन्यास मेरे सामने एक नयी ही दुनिया का द्वार खोल बैठा था। एक ऐसी दुनिया जिसे महज दूर से देख सुनकर इसके एक विशिष्ट पक्ष को ही हम अब तक अपनी सोच का हिस्सा बनाते आये थे या

ये कहें कि हमारी सोच की सीमा जहाँ खत्म होती थी, वन्दना जी का उपन्यास वहाँ से शुरू होता था। यह अबूझ, अदेखी दुनिया थी हमारे देश के सैनिकों की पत्नियों की दुनिया। जी हाँ, सैनिकों के प्रति, कितने ही सम्मान, गर्व और आभार के भाव से भरे हम लोग उनके परिवार के विषय में तब जानते समझते हैं जब कोई सैनिक शहीद हो जाता है। अपने पति के स्थान पर नम आँखों से मेडल या सम्मान पत्र लेती सैनिकों की माँ और पत्नी की इस भूमिका के अतिरिक्त भी उनका क्या योगदान होता है, जिसका निर्वहन वे आजीवन करती हैं, इसके बारे में तो हम विचार ही नहीं करते सैनिकों की पत्नियों के मूक योगदान पर वन्दना यादव जी ने एक ऐसा वृहद् उपन्यास लिख दिया जिसे पढ़कर जाने कितनी बार मेरी आँखें नम हुईं, कितनी बार गर्व महसूस हुआ तो कितनी बार ग्लानि का भाव भी जागा कि इस पक्ष की ओर हमारा ध्यान क्यों नहीं गया।

उस अलक्षित पक्ष को सामने लाने वाली वन्दना जी के परिश्रमी और जुझारू होने का परिचय भी इस उपन्यास से मिलता है. साथ ही साहित्य के प्रति उनकी लगन और अनुराग के भी दर्शन होते हैं क्योंकि इतनी सक्रियता और स्वास्थ्य सम्बन्धी संघर्षों की आँच वे अपने लेखन पर नहीं आने देतीं और उनकी लेखनी की निरंतरता को लेकर एक स्त्री की प्रतिबद्धता भी हमें दिखाई पड़ती है। एक ऐसी स्त्री जो अपने परिवार, रिश्तों, मित्रताओं यानी हर मोर्चे पर सतत संघर्षशील है। लेकिन अगर आप उनसे मिलें तो उनके चेहरे की मुस्कान में कभी कोई बदलाव नहीं आता। वे हर बार उमगकर आपसे मिलेंगी और उतने ही स्नेह और गर्मजोशी से अपने आलिङ्गन में भर लेंगी जितना आपको उनके सकारात्मक ऑरा के स्थायी प्रभाव में लाने के लिए जरूरी है।

वैसे इस उपन्यास से पहले भी मैं वन्दना जी की कई कविताओं को पढ़ चुकी थी। कई मौकों पर उन्हें कविता पाठ करते हुए भी देखा सुना था, उनके लेख भी पढ़े, वे बाल कविताएँ-कहानियाँ लिखती हैं और नेशनल बुक ट्रस्ट की लेखिका हैं, मैं ये भी जानती थी लेकिन उनके इस उपन्यास से लेखन और अपने विषय के प्रति उनकी गंभीरता से भी परिचय हुआ और उनके व्यक्तित्व का एक नया पहलू

भी मेरे सामने आया। इसके बाद हम लोग एक साथ मेरठ गये और एक पूरा दिन हमने साथ गुजारा तो वंदना जी को और करीब से जानने का अवसर मिला। लेखन की भांति उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व के पीछे छिपी एक खुशमिजाज और फराखदिल महिला मेरे सामने थी जिनसे मिलाकर यकीनन मुझे अच्छा लगा। इसके बाद कई एक बार उनके नए प्रोजेक्ट्स के बारे में उनसे चर्चा भी हुई। मैं चाहकर भी उसका हिस्सा तो नहीं बन सकी लेकिन वे अपने काम में जुटी रहीं ऐसी सूचना उनसे मिलती रही।

मेरी सक्रियता पिछले कुछ वर्षों से पहले जैसी नहीं रही है, इसके बाद भी हम लोग यदा कदा मिलते रहे हैं। वन्दना जिस मोहब्बत से मिलती हैं हमेशा एक गहरी छाप छोड़ जाती हैं। उनकी साहित्यिक और सामाजिक सक्रियता मुझे अचरज से भर देती है। अभी पिछले दिनों साहित्य अकादमी के पुस्तक मेले में उनकी किताब पर बोलने का अवसर मिला तो उसी आयोजन में मुझे उनकी तमाम किताबों का भी परिचय मिला और उनकी बहुमुखी प्रतिभा का अहसास भी हुआ। कविता, कहानी, उपन्यास, बाल साहित्य (बाल कविता, बाल कहानी) इस सबके साथ वे मोटिवेशनल किताबें और कॉलम भी लिखती हैं। जीवन के प्रति इतना विविधता भरा दृष्टिकोण हो तभी ऐसा संभव है कि हमारी समस्त ऊर्जा सकारात्मक दिशा में क्रियान्वित हो उसका प्रतिफलन इस रूप में सामने आये। इसी पुस्तक मेले में उनके यात्रा वृत्तांत - "सिक्किम: स्वर्ग एक और भी है" का विमोचन हुआ तो मैंने उन्हें छेड़ते हुए कहा, मतलब कुछ भी छोड़ेंगी नहीं आप वन्दना जी! सिक्किम की अपनी पूरी यात्रा को कितने मनोयोग से उन्होंने शब्दरूप देते हुए एक रोचक किताब लिख डाली और अद्विक प्रकाशन से छपी उस किताब को पढ़ो तो लगता है वन्दना जी की ऊंगली पकड़कर घर बैठे ही सिक्किम यात्रा का लुत्फ उठा लिया।

एक और बात की तरफ़ ध्यान दिलाना मैं जरूरी समझती हूँ और वह है उनकी आत्मीयता और मित्रों के प्रति उनका स्नेह। मेरठ यात्रा के बाद भी उनका पूरा ध्यान रहा कि हम लोग सकुशल घर लौट जाएँ क्योंकि आने में समय लग गया था और मेरे दाँत में दर्द की दवा के कारण मेरी तबियत कुछ ठीक नहीं थी। पर वन्दना जी फॉलो अप करती रहीं। इसी तरह अन्य आयोजन में भी मैं आयी तो पाँव में चोट लगी हुई थी। वन्दना जी ने लाख कहने के बाद भी मुझे अकेला जाने नहीं दिया। वे कैब के लिये आग्रह करती रहीं और मैं बड़ी मुश्किल से उन्हें राजी कर पायी कि वे मेरी चिंता न करें और अपने पाठकों और अतिथियों को अटैंड करें। तो भी उन्होंने ज़िद करके मेरे साथ दो

युवा साथियों को भेजा पर रात हो चुकी थी। मैं पहले दिन कैब में गई थी तो ट्रैफिक में फंसकर लेट हो गई थी। जल्दी निकलने की इच्छा लिए उन्हें समझाकर मेट्रो से घर निकल गई। पर वन्दना जी तो वन्दना ठहरी, फोन पर उनकी स्नेह मीठी झिड़की भी मिली और मनुहार भी। तब तक उन्हें तसल्ली नहीं हुई जब तक मैंने समझा नहीं दिया कि मैं भली भांति घर पहुँच गई हूँ तो वे भी चैन की नींद सोयें।

वन्दना जी की साहित्यिक यात्रा निरंतर जारी है। और हजार बरस जारी भी रहेगी ऐसी आशा है। उम्मीद यह भी है कि बहुत जल्दी वन्दना जी फिर से अपनी नई किताबों के साथ हाज़िर होंगी और हमें विस्मय में डाल देंगी कि ओह! तो इस बार वन्दना जी नया क्या लेकर आई हैं! इसे मेरी शुभकामना भी मान सकते हैं, वंदना जी को सतत साहित्यिक सक्रियता के लिए एक नहीं, बहुत सारी शुभकामनायें!

—साहित्यकार, दिल्ली

Email : anjuvsharma2011@gmail.com



चीन से लगते भारत के द्वार पर वन्दना यादव

“कुण्डी की आवाज़”

दरवाज़े की कुण्डी खड़का रहा था
रात भर कोई
कुण्डी का आवाज़
कानों में, ज़ेहन में
और मन में बस गई है।
अक्सर हर रात कुण्डी खड़कने की आवाज़
आने लगी है
जब से ख़बर आई है कि
गांव के घर की
पिछली दीवार में लगा दरवाज़ा
गिर गया था
बीती बरसातों में
जब बंद घर की
पिछली दीवार ढह गई थी।

“पहाड़ जिंदा है।”

पहाड़ को याद आते हैं
आबाद दिन
जब देखता है
अपनी जर्जर देह और
बुझी आँखों वाली
थकी पहाड़ियों को
जिन्हें
पी गया पलायन
और बचे-खुचे पहाड़ी
जिन्हें लील लिया
शराब की बोतलों ने
आबाद दिनों वाले पहाड़
आज जिंदा है तो सिर्फ़
औरतों की हिम्मत और
उनके हौसले पर।

“जायका”

उस रोज़ जब
चूल्हे पर सिंक रही थी रोटी

और मैं
जल्दबाजी में
छोड़ आई थी उसे बिना चखे
उसका जायका
आज भी ताज़ा है ज़ुबान पर
उतना ही
जितनी तवे पर सिंकती
कंडों पर फूलती
रोटी थी
उस दिन।

“आसमान की छत”

टिमटिम करते तारे
आसमान में
मम्मा ने इतनी बार दिखाए थे
कि दोस्ती हो गई थी
टिमटिमाते तारों से।
संगी-साथी लगते थे
सारे-के-सारे
और बादलों वाली रात में
जब कभी वो आना भूल जाते थे
सूनी हो जाती थी
रात के साथियों की टोली
उजाड़ लगती थी उस रात
आसमान की छत।

“नमक”

मीठे
बेस्वाद
फीके
और
ऊबाऊ जीवन का
स्वाद हो तुम
सुनो,
तुम्हें मालूम है ना कि
मेरे जीवन का
नमक हो तुम।

“शिकायतें”

इन दिनों
दोस्तों से मिलने की
पहले-सी तलब नहीं रही।

'आजा, आधी दूर तू,
आधी दूर मैं।
बिताएंगे वक्त कुछ देर
एक साथ।'।
यह कहना,
जबरदस्ती बुलाना
एक-दूसरे को,
अब
पहले सी
जिद्द नहीं रही।

इन दिनों ना आने पर दोस्तों के
पहले सी
शिकायतें नहीं रहीं।

“हथेली की रेखाएं”

माथे की लकीरों से
हथेली की रेखाओं तक
तलाशा
और जब
खो दिया पाने से पहले ही
मंजिल को
तब हाथों की उंगलियों ने
गढ़ना शुरू किया
अपना एक अलग जहां
जिसका तख्त भी अपना
ज़मीन भी अपनी
आसमान भी अपना
और बादशाहत भी अपनी मर्जी की।
उंगलियों के संघर्ष ने
बदल दिया है

नसीब का लिखा
और जादू जगा दिया
हथेली की रेखाओं में।

“डिब्बाबंद खुशियाँ”

थाल भरकर
परोसी जाती थीं
और
परात भर
पहुँचाई जाती थीं जो खुशियाँ
घर-घर।
अब ढल गई हैं
डिब्बाबंद मेवों में।

“इश्क में होना”

गहरी आँखों वाले
चेहरे पर
खिंची रहती है
मुस्कान की लकीर।
आँखों में उसकी
शरारत नाचती हैं
इन दिनों।
पोर-पोर पर
छाई रहती हैं अजब-सी खुमारी
और
किसी का हो जाने की चाह।
उसके वजूद पर
सवार रहने लगी है
अजब-सी रूमानीयत
इन दिनों।
खबर फैल गई है सब ओर
कि इन दिनों
कोई
इश्क में है।

—दिल्ली



फिल्म निर्देशक अशोक कौल के साथ यात्रा-वृत्तांत पर बात करते हुए



आईआईसी में सम्मानित होते हुए



पूणे 'सूर्यदत्ता नेशनल अवॉर्ड फॉर लिटरेचर 2024' से पुरस्कृत होते हुए



गाज़ियाबाद में यादव समाज द्वारा सम्मानित होते हुए। बायें से दूसरे स्थान पर श्री राम अवतार यादव, वन्दना यादव, श्री लक्ष्मीनारायण यादव, श्री रामकृपाल यादव



वरिष्ठ साहित्यकार अजय नावरिया, कार्टूनिस्ट इरफ़ान और चर्चित लेखक राजीव तनेजा के साथ वन्दना यादव एक कार्यक्रम के दौरान।



कुछ अनौपचारिक पल



वन्दना यादव, रश्मि, उषा रानी, राहुल देव, प्रोफेसर सत्यकेतु सांकृत और मुंबई के वरिष्ठ साहित्यकार रमेश यादव के साथ कुछ हल्के-फुल्के पल



पुस्तक मेले में शुद्धि उपन्यास का लोकार्पण



वरिष्ठ साहित्यकार चित्रा मुद्गल के साथ साहित्य अकादमी दिल्ली में



वरिष्ठ साहित्यकार ममता कालिका के साथ



पूर्व रक्षामंत्री निर्मला सीतारमण एवं पत्रकार संगीता यादव के साथ



सुप्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह के साथ



संगीतकार एवं गायक अनु मलिक के साथ



वाणी प्रकाशन की कार्यकारी निदेशक अदिति माहेश्वरी गोयल